भारत के तीन वीर

लेखक

यशपाल शर्मा

योगेन्द्र शर्मा

१९६६

हिन्दी साहित्य केन्द्र

चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

मूल्य २ रुपये

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य केन्द्र
चावड़ी बाजार दिल्ली

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक . श्री कम्पोजिंग केन्द्र द्वारा विश्वकर्मा आर्ट प्रिंटिंग प्रेस
कोडीया पुल दिल्ली ।

महाराणा प्रताप

बाल्य-काल

आज से लगभग पौने चार सौ वर्ष पूर्व मेवाड़ में महाराणा उदयसिंह का राज्य था। महाराणा उदयसिंह बहुत प्रतापी राजा थे। मुसलमानी राज्य में वही भारत की शान थे।

विक्रमी संवत् १५५६ में आपके यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया, जिसका नाम प्रताप रखा गया। यही बालक प्रताप बाद में महाराणा प्रताप के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसने मेवाड़ और भारतीय स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपना सारा जीवन भेंट चढ़ा दिया, जीवन-भर आपत्तियों का सामना किया परन्तु अपनी आन को बट्टा नहीं लगने दिया और मुगलों की दासता स्वीकार नहीं की।

महाराणा उदयसिंह के यहाँ २३ पुत्रो ने जन्म लिया था। महाराणा प्रताप उन सब मे बडे थे। ये बचपन से ही होनहार थे। खेल कूद मे उनका कौशल देखकर उनके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना सहज ही की जा सकती थी।

घुडसवारी का आपको बचपन से शौक था। मेवाड के वनो और ऊँचे-ऊँचे पहाडो पर आप निर्भीकतापूर्वक घोडे पर चढ कर दौड लगाया करते थे। जब वह बहुत छोटे ही थे तभी से उन्होने गिरोह बनाना आरम्भ कर दिया था। वह अपने साथियो को लेकर पहाडो पर जाते और उन्हे शत्रु का सामना कैसे करना चाहिए, यह कौशल सिखाते थे।

जिस समय ये बडे हुए तो भारत-भूमि के अधिकाश भाग पर मुगल सम्राट् अकबर का राज्य था। वही उस समय का शाहशाह था। अकबर बहुत बुद्धिमान और नीति-कुशल बादशाह था। उसने राजपूतो पर अपनी मित्रता का जाल बिछाकर उन्हे अपना दास बना लिया था। उनके साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित कर लिया था।

महाराणा उदयसिह अकबर की इस चाल को समझते थे और उसकी मित्रता का अर्थ जानते थे। उन्हे दासता से घृणा थी इसलिए उन्होने किसी भी मूल्य पर अकबर से मित्रता

करनी स्वीकार नही की और अकबर का कोई भी
उन्हे वश मे न कर सका।

अकबर महाराणा उदयसिह से बहुत क्रुद्ध था फलत उसने मेवाड पर चढाई कर दी। मेवाड की सेना मुगल बादशाह की सेना के सामने नगण्य थी। इसलिए उदयसिह अकबर का सामना न कर सके। उन्हे राज्य छोड देना पडा और मेवाड़ पर अकबर का अधिकार हो गया।

महाराणा उदयसिह ने चित्तौड से हटकर अरावली पर्वत पर अपना शिविर लगाया। वही आपने उदयपुर नामक एक नगरी बसाई और उसी को अपनी राजधानी बनाया।

चित्तौड़ पर अकबर का अधिकार हो जाने के पश्चात् आप निरन्तर उसपर अधिकार करने का प्रयास करते रहे परन्तु मृत्यु-पर्यन्त अपना खोया हुआ राज्य न लौटा सके। इसके चार वर्ष पश्चात् आप यमलोक सिधार गए।

राजतिलक

महाराणा उदयसिह का प्रेम अपनी छोटी रानी मे अधिक था। उनका बडा पुत्र जगमल था। वह प्रताप के समान साहसी और तेजस्वी नही था और आयु मे भी प्रताप से छोटा था परन्तु महाराणा उदयसिह ने अपनी छोटी रानी को प्रसन्न

सचालन करने और शत्रु का सामना करने की क्षमता भी उसमे नही थी। इसलिए सब सरदारो ने मिलकर यही निर्णय किया कि राणा प्रताप को ही राज्य का अधिकारी माना जाय।

सब सरदारो ने मिलकर जब अपना यह मत महाराणा प्रताप के समक्ष रखा तो वह बोले, "वीर सरदारो! पिताजी की अन्तिम इच्छा यही थी कि जगमल राज्य का अधिकारी हो। इसलिए मैं उनकी इस इच्छा को बदल कर उनकी दिवगत आत्मा को कष्ट नही पहुँचा सकता।"

इसपर एक वयोवृद्ध सरदार बोला, "वीर प्रताप! राज्य बच्चो के खेलने का खिलौना नही है जिसे माता-पिता अपने जिस बच्चे के भी हाथ मे चाहे, थमा दे। इसके पीछे बहुत बडा दायित्व है। हम राजपूतो की यह शान का प्रश्न है। हमारी सुरक्षा और मातृभूमि के उद्धार का प्रश्न है। यह राजगद्दी फूलो की सेज नही है, काँटो की शय्या है। क्या तुम चाहते हो कि हमारी जन्म-भूमि सदा-सर्वदा के लिए मुगलो के अधिकार मे बनी रहे? क्या तुम चाहते हो कि राजपूतो का सम्मान सर्वदा के लिए समाप्त हो जाए?"

वयोवृद्ध राजपूत सरदार की यह बात सुनकर राणा प्रताप के भुजदण्ड फडकने लगे। उनके सामने जन्म-भूमि के उद्धार का प्रश्न उपस्थित हुआ। वह सरदारो के आग्रह को न टाल

सके। जगमल से उन्हे भी आशा नही थी कि मेवाड़ का उद्धार करने के लिए उसे ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

महाराणा का यह निर्णय राजपूत सरदारो को पसद न आया। महाराणा ने अपने इस निर्णय के द्वारा राजपूतों की पुरानी प्रथा को ठेस पहुँचाई। प्राचीनकाल से उत्तराधिकारी बनने का नियम यही चला आ रहा था कि ज्येष्ठ पुत्र राज्य का अधिकारी बने। इसके अतिरिक्त जगमल प्रताप के समान यशस्वी भी नही था। सरदारो पर नियन्त्रण रखने, सैन्य-कर सकेगा और मुगलो से लोहा ले सकेगा। प्रताप ने बहुत सोच-विचार कर अपनी सहमति प्रकट कर दी।

राणा प्रताप के सहमति प्रकट करने पर राजपूत सरदारो को महान सतोष प्राप्त हुआ। उन्होने एक विराट समारोह का आयोजन किया और एक मत होकर राणा प्रताप का राज-तिलक कराया।

महाराणा प्रताप ने राजसिहासन पर बैठकर मेवाड़ के उद्धार की प्रतिज्ञा की और कहा, "राजपूत वीरो! मैं जब तक अपनी जन्मभूमि मेवाड को मुगलो के हाथों से मुक्त न करा लूंगा, तब तक चैन से न बैठूँगा और आराम की नीद न सोऊँगा।"

महाराणा प्रताप की प्रतिज्ञा सुनकर राजपूत वीरो मे एक बार फिर से प्राणो का सचार हुआ। वे सभी अपनी जन्मभूमि को स्वतन्त्र कराने के लिए दृढ-प्रतिज्ञ हो गए।

महाराणा प्रताप ने अपनी सेना का संगठन किया। सेनाकी संख्या मे वृद्धि की और उन्हे हथियारो से लस किया। तोर, भाले, बरछी, तीरकमान, तलवार बनाने का प्रबन्ध किया। आपने भाले की लडाई को उत्तम समझा। इसीलिए स्वय भी उसमे विशेष दक्षता प्राप्त की और भालो से लडने वाली एक सुदृढ सेना तैयार की।

इसी बीच एक दिन महाराणा प्रताप और उनका भाई शक्तिसिह जगल मे शिकार खेलने के लिए गए। अन्य राजपूत सरदार भी उनके साथ थे। उनके राज-पुरोहित भी साथ गए थे।

शिकार खेलते-खेलते सध्या समय हो गया। महाराणा प्रताप और शक्तिसिह की दृष्टि एक साथ एक जगली सुअर पर गई। सुअर बहुत जबरदस्त था। दोनो एक साथ उसे मारने के लिए लपके। दोनो ने धनुप बाण सँभालकर सूअर पर तीर छोडे और सुअर धराशायी हो गया।

महाराणा प्रताप बोले, "मेरा तीर ठीक निशाने पर लगा। एक ही तीर सुअर ककाम तमाम कर दिया।"

उनके निकट खडा शक्तिसिह बोला, "सुग्रर मेरे तीर से मरा है। ग्रापके तीर को खाकर तो वह भाग निकला था।"

इस पर दोनो भाइयो मे सघर्ष ग्रारम्भ हो गया। प्रताप बोले—सुग्रर मैने मारा है ग्रौर शक्तिसिह बोला कि सुग्रर मैने मारा है। इस जरा सी बात का बढकर तूफान उठ गया। दोनो ही क्रोध मे पागल हो उठे। दोनो ने ग्रपनी-ग्रपनी तलवारे निकाल ली ग्रौर एक-दूसरे पर टूट पड़ने को उद्यत हो गए।

ग्रनर्थ की सम्भावना स्पष्ट सामने दिखाई देने लगी। सरदारो ने दोनो भाइयो को समझाने का प्रयास किया परन्तु क्रोध मे दोनो ही पागल हो उठे थे। दोनो ने ही धैर्य का परित्याग कर दिया था ग्रौर दोनो की ग्राँखो से खून बरस रहा था।

राज पुरोहित खडे-खडे इस दृश्य को देख रहे थे। उन्होने देखा कि नादान लडके एक छोटी-सी बात को लेकर ग्रापस मे भयंकर कलह का बीज बोने के लिए उद्यत है। उन्हे राज्य पर सकट ग्राता दिखाई दिया। उन्हे लगा कि जैसे वह ग्रग्नि रक्त से ही बुझ सकती थी ग्रन्य किसी वस्तु से नही।

पुरोहितजी बोले, "नादान बच्चो! इस प्रकार जरा-जरा-सी वातो पर यदि तुम इस प्रकार एक-दूसरे का सिर फोडने

को उद्यत रहोगे तो जन्मभूमि तुमसे अपने उद्धार की क्या आशा रख सकती है ? मैं देख रहा हूँ कि यह ज्वाला जो तुम्हारे हृदयो मे जल उठी है, रक्त चाहती है। लो, मै अपना रक्त देकर इसे शान्त करता हूँ।" यह कहकर राज-पुरोहित ने अपने पेट मे कटार भोक ली और वह लड़खड़ाकर भूमि पर गिर पडे।

यह देखकर महाराणा प्रताप को बहुत खेद हुआ। वह राज-पुरोहित का बहुत आदर करते थे। उन्होने उसी समय शक्तिसिह को अपने राज्य से बाहर निकल जाने की आज्ञ दी।

शक्तिसिह को इस प्रकार राज्य से निकाल देना महाराणा प्रताप की महान् राजनैतिक भूल थी। उन्होने उसके परिणामा पर विचार न करके इस कार्य मे शीघ्रता की।

शक्तिसिह ने भी सयम से काम नही लिया। सयम होता तो क्या दो भाई इस प्रकार एक साधारण-सी घटना पर एक-दूसरे का सिर फोडने को उद्यत हो जाते और इतनी भयकर घटना घटती कि राज पुरोहित जैसे देशभक्त और अनुभवी सलाहकार अपने पेट मे छुरी भोक लेते ?

शक्तिसिह वहाँ से चलकर सीधा आगरा पहुँचा और अकबर के दरबार मे जाकर उसने महाराणा प्रताप से अपना विरोध प्रकट किया।

अकबर को मुँहमाँगी मुराद मिल गई। वह तो महाराणा प्रताप को पहले से ही शक्तिहीन करने का स्वप्न देख रहा था। शक्तिसिह को अपने दरबार मे देखकर उसे मन-ही मन बहुत प्रसन्नता हुई। उसने शक्तिसिह को विशेष आदर-सम्मान दिया और अपना मित्र बना लिया।

: २ :

महान् प्रतिज्ञा

महाराणा प्रताप जिस समय गद्दी पर बैठे, उस समय राजपूतो की दशा अच्छी नही थी। अजमेर, बूंदी, जयपुर के राजपूत राजा अकबर की शरण मे जा चुके थे। ये लोग चाहते थे कि महाराणा प्रताप भी उनकी तरह अपनी मूछे नीची करके मुगल बादशाह की आधीनता स्वीकार कर ले। इसीलिए वे महाराणा से वैर-भाव रखते थे।

अकबर तो महाराणा प्रताप के स्वतन्त्र अस्तित्व को सहन कर ही नही सकता था। उसकी आँखो तो यह काँटे के समान चुभते थे। वह साम, दाम, दण्ड, भेद किसी भी प्रकार इन्हे अपने आधीन करना चाहता था। शक्तिसिंह के अपने दरबार मे आ जाने से अकबर का साहस और भी बढ गया था और वह अवसर खोज रहा था कि किस प्रकार महाराणा को परास्त कर भारत पर अपना एकछत्र राज्य स्थापित करे।

महाराणा प्रताप के पास यहाँ उदयपुर मे धन का भी अभाव था क्योकि उनके पूर्वजो का पुराना कोष चित्तौड के किले मे रह गया था और उस पर मुगलो का अधिकार था' गत चार वर्ष मे महाराणा उदयसिह के निरन्तर मुगल बादशाह से सघर्ष करने के कारण उनके तीस हजार सैनिक युद्ध मे खेत रहे थे।

महाराणा प्रताप का भाई जगमल तो पहले ही जब उसे राज नही मिला था तो अकबर से जाकर मिल गया था। अब शक्तिसिह भी अकबर से जा मिला था। ऐसी दशा में महाराणा प्रताप अकेले ही रह गए। परन्तु साहस उनमें इतना था कि वह किसी भी आपत्ति से भयभीत होने वाले नही थे। उन्होने किसी भी बात की कोई चिन्ता न की। वह अपनी छोटी-सी सेना को ही मुगलो का काल समझते थे। उन्ही के दम पर वह अपनी शक्ति को कम नही समझते थे।

महाराणा प्रताप को अब अपनी जन्मभूमि के उद्धार की चिन्ता थी। उन्हे रात-दिन उसी का ध्यान रहता था और वह उसी के विषय मे सोचते रहते थे। चित्तौड़ पर मुगल शासन देखकर उनके रक्त मे उबाल आने लगता था और उनके भुजदण्ड फडक उठते थे। वह चित्तौड को मुक्त करने का मार्ग खोज रहे थे।

महाराणा प्रताप ने अपने साहसी सामन्तो को एकत्रित करके एक दिन कहा, "वीर सामन्तो ! हमारी जन्म-भूमि मेवाड पर मुगलो का अधिकार है। पिताजी इतने दिन सघर्ष करके भी उसे मुक्त न कर सके। यह वही पुण्य-भूमि है जहाँ हमारे पूर्वजो ने कभी स्वच्छन्द रहकर जीवन व्यतीत किया था। इसकी स्वतन्त्रता के लिए हमारे पूर्वजो ने पानी की तरह अपना रक्त बहाया है और अपने शीश इसकी पुण्य वेदी पर चढाए है।

वीरो ! क्या हम इसे मुक्त नही कर सकते ? क्या हम इसे इसी प्रकार यवनो द्वारा दलित देखते रहेगे ? क्या हमारे अदर इतना साहस नही कि हम फिर से उस पर अपना राज्य स्थापित करे ? मैं आज आप सब वीरो के समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक चित्तौड-गढ पर अपना झंडा न फहरा दूंगा और जन्म-भूमि को मुक्त न कर लूगा। तब तक सोने-चाँदी के बर्तनो मे भोजन न करूँगा। जन्मभूमि को स्वतन्त्र किए बिना एक घडी भी चैन से न बैठूंगा। मैं जमीन पर सोऊँगा और झोपडी में निवास करूँगा। महल अब मेरा निवास-स्थान नही रहा। मै उस समय तक हजामत न कराऊँगा जब तक अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर लूंगा।"

महाराणा प्रताप के सब वीरो ने उनके साथ प्रतिज्ञा की कि उनके बदन मे जब तक एक भी बूद रक्त की रहेगी तब तक वे मातृभूमि की स्वतत्रता के लिए सघर्ष करते रहेगे और जो भी प्रतिज्ञाएँ महाराणा ने की है उन सबकोअपने जीवन में घटाएंगे।

सामतो की प्रतिज्ञा सुनकर महाराणा प्रताप को आत्म-सतोष हुआ। उन्होंने शांति की सास ली और मातृभूमि को स्वतंत्र करने के संघर्ष मे जुट गए। उन्होने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी।

महाराणा प्रताप ने अपनी इस प्रतिज्ञा का आजीवन पालन किया। उस दिन के पश्चात् उन्होने कभी महल मे निवास नही किया, पलग पर नही सोये और चाँदी-सोने के बर्तनो मे भोजन नही किया।

महाराणा प्रताप ने उदयपुर के राजमहलो का परित्याग कर उदय सागर झील के निकट एक कुटिया बनवाकर उसमे रहना आरम्भ किया।

महाराणा प्रताप को अकबर के उदयपुर पर आक्रमण करने का भय था। इसलिए आपने उदयपुर निवासियो को नगर खाली

करके कोमलमीर घाटी मे जाकर वसने की आज्ञा दी। बात-की-बात मे नगर खाली हो गया। नगर निवासी उदयपुर छोड-कर कोमलमीर की घाटी मे चले गए।

महाराणा प्रताप के लिए उनकी प्रजा का हर व्यक्ति अपने प्राणो को न्यौछावर करने को उद्यत था। वह उन्हे राष्ट्र का सच्चा नायक मानता था। उसकी सुरक्षा के लिए वह अपने प्राणो को नगण्य समझता था।

इसी समय की एक घटना है कि एक गडरिए ने महाराणा की आज्ञा का उल्लघन करके उदयपुर खाली नही किया। आज्ञा की अवज्ञा करने के अपराध मे उसे प्राणदण्ड मिला। उसके दामाद ने भी उसका साथ दिया तो उसे बन्दी बना लिया गया।

इस गडरिये के बेटे का नाम शीरा था। जब उसे यह पता चला कि उसके पिता को महाराणा ने प्राणदण्ड दिया है तो उसका हृदय राणा के प्रति विद्वेश से भर उठा। उसने प्रतिज्ञा की कि वह राणा को मारकर अपने पिता की मृत्यु का बदला लेगा।

शीरा की यह बात उसकी वहन को ज्ञात हो गई। वह अपने भाई से बोली, "भाई! तुम यह नीच काम करने का

विचार त्याग दो। महाराणा को मारकर तुम मेवाड की सब स्त्रियो को अनाथ कर दोगे। वह मेवाड की आन के रक्षक हैं। उनकी आज्ञा का पिताजी को और मेरे पति को उल्लघन नही करना चाहिए था।"

शीरा को उसकी बहन ने बहुत समझाया परन्तु वह अपनी जिद से न डिगा। उसने राणा से बदला लेने का निश्चय कर लिया था। वह घोडे पर सवार होकर राणा से बदला लेने के लिए चल पडा।

शीरा को जाते देख उसकी बहन भी दूसरे घोडे पर सवार हुई और महाराणा के पास अपने भाई से भी पहले जा पहुँची। उसने महाराणा से कहा, "महाराज! मै आपको एक सूचना देने आई हूँ।"

महाराणा ने पूछा, "क्या सूचना है तुम्हारे पास ?"

शीरा की बहन बोली, "आपने उदयपुर नगरी को खाली न करके अपनी आज्ञा उल्लघन के अपराध में मेरे पिता को मृत्यु-दण्ड दिया था और मेरे पति को बन्दीगृह में डाला हुआ है।"

महाराणा ने गम्भीर दृष्टि से उसकी ओर देखा।

वह स्त्री बोली, "महाराज ! मेरे भाई ने जब यह सुना कि आपने पिताजी को प्राणदण्ड दिया है तो वह क्रोध से पागल हो उठा और आपको मारने के लिए आ रहा है। कृपया आप अपने बचाव का प्रबन्ध करे।"

महाराणा प्रताप यह सुनकर बहुत प्रभावित हुए। उनके नेत्रो मे जल भर आया। अपने प्रति उस स्त्री की इतनी श्रद्धा देखकर उन्होने उसके पति को मुक्त करा दिया। उसके पिता को प्राण-दण्ड दिए जाने पर भी उन्हे खेद हुआ।

उसी समय कुछ सैनिको ने उस स्त्री के भाई शीरा को बन्दी रूप मे महाराणा के सम्मुख प्रस्तुत किया और बताया कि वह उनके प्राण लेने के अभिप्राय से वहाँ आया था।

महाराणा प्रताप ने उसे भी मुक्त कर दिया और कहा, "शीरा ! मुझे दुःख है कि तुम्हारे पिता को प्राणदण्ड दिया गया परन्तु उन्हे राजाज्ञा का उल्लघन नही करना चाहिए था। हमने उदयपुर खाली करने की आज्ञा तुम लोगो की सुरक्षा को ध्यान मे रखकर ही दी थी।"

यह सुनकर शीरा बहुत लज्जित हुआ और महाराणा के चरणो पर गिर पड़ा।

इतना प्रेम था वहाँ की जनता के मन मे अपने महाराणा के लिए। वहाँ का बच्चा-बच्चा महाराणा पर न्योछावर होने को उद्यत था। वह उनको अपना सच्चा रक्षक और हितैषी मानता था।

: ३ :

मानसिंह की भेंट

महाराणा प्रताप ने कोमलमीर दुर्ग मे युद्ध की तैयारी करनी आरम्भ की। इस दुर्ग के चारो ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड थे और घाटियो से होकर ही वहाँ तक पहुँचा जा सकता था। इस दुर्ग के पास तक पहुँचना सरल कार्य नही था।

महाराणा के सैनिक वहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि से परिचित थे। वहाँ की घाटियो और पहाड़ो का उन्हे ज्ञान था। दुर्ग तक पहुँचने के मार्ग भी वे ही जानते थे। उन सभी मार्गों पर उन्होने पहरे बिठाये हुए थे। शत्रु सीधा वहाँ तक नही पहुँच सकता था। इसलिए धोखे से इस दुर्ग पर आक्रमण करना सरल कार्य नही था।

महाराणा प्रताप धीरे-धीरे अपनी शक्ति का सगठन कर रहे थे। अपनी सेना की सख्या भी उन्होने बढानी आरम्भ कर दी थी। उनके पास अस्त्र-शस्त्रो की बहुत कमी थी। उन्होने अपने सैनिको को आज्ञा दी कि जो मुगल व्यापारी मेवाड़ के

रास्ते से सूरत जाते मिले उन्हें लूट लिया जाए और उनके अस्त्र-शस्त्र छीन लिए जाएँ। उनके रक्षको को मार डाला जाए और उनका सामान लूटकर सरकारी खजाने मे जमा कर दिया जाए।

इस योजना के फलस्वरूप महाराणा प्रताप के सैनिको के पास काफी अस्त्र-शस्त्र एकत्रित हो गए। परन्तु साथ ही अकबर के पास नित्य इस लूटमार की शिकायते व्यापारियों द्वारा पहुँचने लगी। शिकायते सुनते-सुनते अकबर परेशान हो उठा। वह महाराणा प्रताप को किसी प्रकार अपने वश मे करना चाहता था। महाराणा की वीरता और शौर्य की कहानियाँ भी वह सुन चुका था। उसे पता था कि वह अन्य राजपूत राजाओ की तरह उसकी दासता स्वीकार नही करेगा।

इन्ही दिनों शीतल नाम का एक प्रसिद्ध भाट राणा प्रताप के दरबार में आया। उसने महाराणा की प्रशसा मे एक रचना की और फिर उसे उनके दरबार मे जाकर सुनाया। राणा भाट की रचना से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने अपनी पगड़ी उतार कर पुरस्कार-स्वरूप उसेदे दी। भाट ने राणा का यश-गान करके उनसे विदा ली।

शीतल भाट कुछ दिन पश्चात् भारत-भ्रमण करता हुआ आगरा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने सोचा कि वह अकबर बादशाह से भेट करे। वह उनके दरवार में पहुँचा। दरबार के नियमो के अनुसार उसने झुककर अकबर का अभिवादन किया परन्तु सिर झुकाने से पूर्व उसने अपने सिर की पगड़ी उनार ली।

अकबर ने भाट के पगडी सिर से उतारने की क्रिया को बडे ध्यान से देखा। उसने पूछा, "शीतल भाट! तुमने हमारे दरबार के नियमो का पालन करके सिर तो झुकाया परन्तु पगडी उतार ली। क्या इसका कारण बता सकते हो कि तुमने ऐसा क्यो किया ?"

शीतल भाट बोला, "शाहशाहे आलम! यह सिर मेरा है इसलिए मैंने आपके सामने इसे झुका दिया। मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया। परन्तु यह पगडी जो मेरे सिर पर रखी हुई है, महाराणा प्रताप की है। यह उन्होंने मुझे मेरी कविता पर प्रसन्न होकर भेंट की थी। इसे मै भगवान के अतिरिक्त अन्य किसी के सामने नही झुका सकता।। यह पगडी उस महाराणा की है जिसने भारतीय आत्म-सम्मान को अभी तक कायम रखा हुआ है।"

भाट की यह निर्भीक बात सुनकर अकबर के सब दरबार चकित रह गए। महाराज मानसिह का चेहरा फीका पड गया। मुसलमान सेनापतियो की त्यौरियाँ चढ गई परन्तु बादशाहो अकबर मुस्कराते ही रहे। उसके दिल मे बडी पीडा हुई। एक एक टीस-सी उठ खडी हुई परन्तु उसने चेहरे पर उसके भावो को नही आने दिया और मन मे निश्चय किया कि एक दिन वह उस पगडी को अपने सामने झुकाकर ही दम लेगा। इससे पूर्व वह भी चैन से बैठनेवाला नही है।

इसके कुछ दिन पश्चात् महाराज मानसिंह दक्षिण-विजय

करके लौट रहा था। उसने सोचा कि वह मार्ग मे महाराणा प्रताप से भेट करे।

महाराजा मानसिंह जयपुर के राजा बिहारीमल का पुत्र था। बिहारीमल ही वह पहला राजा था जिसने अपनी पुत्री मुगल बादशाह को दी थी। मानसिंह अकबर के नौरत्नों मे से एक था। वह बहुत बहादुर सिपहसालार था। अकबर को इसकी बहादुरी पर गर्व था। मुगल साम्राज्य की नीव को पाताल तक पहुँचनेवाले महारथियो मे से यह एक था। मानसिंह की सहायता से अकबर ने अपने राज्य का बहुत व्यापक विस्तार किया था।

महाराणा प्रताप से भेट करने के लिए महाराज मानसिंह ने मेवाड़ की दिशा मे प्रस्थान किया। मानसिंह ने अपना एक दूत महाराणा प्रताप के पास भेजा। दूत ने दरबार मे जाकर कहा, "महाराज मानसिंह ने मुझे आपकी सेवा मे भेजा है। महाराज आपका दर्शन करना चाहते है।"

महाराणा प्रताप महाराज मानसिंह से घृणा करते थे। वह मानसिंह से भेट नही करना चाहते थे। ऐसे धर्मच्युत देशद्रोही का वह मुंह भी देखना नही चाहते थे। परन्तु क्योंकि मानसिंह एक अतिथि के रूप मे उनके दर्शनार्थ आना चाहता था इसलिए वह मना भी नही कर सकते थे। इसलिए महाराणा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह को महाराज मानसिंह के स्वागत के लिए भेजा।

कुँअर अमरसिंह ने उदयसागर झील पर महाराज मानसिंह का स्वागत किया। वही पर उनके ठहरने का प्रबन्ध किया गया। राजसी ठाट-बाट का सब प्रबन्ध था। शान-शौकत मे कोई कमी नही आने दी गई।

महाराज मानसिंह को भी अपनी शक्ति का अभिमान था। वह सोच रहा था कि उसके वहाँ जाने से महाराणा प्रताप अपने को कृतार्थ समझेगे और दौडे-दौडे उसके स्वागत के लिए आएँगे। परन्तु यहाँ आकर उसने यह रूप देखा तो उसे यह स्वागत फीका और नीरस प्रतीत हुआ।

सध्या को भोजन का समय हुआ। बडे ठाट-बाट के साथ भोजन परोसा गया। सब सामग्री जुट जाने पर कुँअर अमरसिंह ने महाराज मानसिंह से भोजन करने की प्रार्थना की।

महाराज मानसिंह ने देखा कि महाराणा प्रताप अभी भी नही आए। उन्होने अमरसिंह से पूछा, "कुमार! राणा क्यो नही आए?"

अमरसिंह बोला, "महाराज! भोजन करें। पिताजी के सिर मे दर्द है। इसीलिए वह नही आ सके। उन्होने अपने न आ सकने पर आपसे क्षमा याचना की है।"

यह सुनकर मानसिंह समझ गया कि यह सिरदर्द बनावट मात्र है। वास्तव मे सत्य यही है कि राणा प्रताप उसके साथ बैठकर भोजन करना अपना अपमान समझते है। वह बोला, "कुमार! घर के स्वामी के न रहने पर तो अतिथि

भोजन नही कर सकता । यह अतिथि का कैसा स्वागत होता है तुम्हारे यहाँ ?"

अमरसिह बोला, "पिताजी की अनुपस्थिति मे महाराज ! क्या मैं घर का स्वामी नही हूं ? मै उनका ज्येष्ठ पुत्र हूँ ।"

महाराज मानसिंह बोले, "तुम ज्येष्ठ पुत्र अवश्य हो परन्तु राणा प्रताप नही । सम्भवत महाराणा प्रताप इस क्षुद्र व्यक्ति के पास बैठकर भोजन करना अपना अपमान समझते है ।"

अमरसिह बोला, "आप अपने मन मे यह भाव न लाएँ महाराज ! पिताजी तो छोटे-से-छोटे व्यक्ति के पास बैठकर भोजन करने में भी अपना अपमान नही समझते । आप भोजन करे, उनके सिर मे वास्तव मे दर्द है ।"

मानसिह सगर्व बोला, "मै बच्चा नही हूँ अमरसिह ! प्रताप के सिर-दर्द को मै खूब समझता हूँ । यदि प्रताप मेरे साथ बैठकर भोजन नही करेगा तो मै यहाँ भोजन नही कर सकता। "

अमरसिह ने इधर-उधर की बहुत बाते की परन्तु मानसिह वास्तव मे बच्चा नही था । वह भोजन करने को किसी भी दशा मे उद्यत न हुआ । अन्त मे जब महाराणा प्रताप ने देख लिया कि मानसिह उनके वहाँ जाए बिना भोजन न करेगा तो वह स्वय वहाँ आ गए ।

महाराणा प्रताप बोले, "राजा मानसिह ! मुझे हार्दिक खेद है कि मै आपके साथ बैठकर भोजन नही कर सकता। आपने धन और प्रतिष्ठा के लोभ के वशीभूत होकर भारत की प्रतिष्ठा को यवनो के हाथो बेच दिया है। आपने वह कार्य किया है कि भारतीय सस्कृति पर सर्वदा एक कलक बनकर चमकता रहेगा। ऐसा हमारे पूर्वजो ने पहले कभी नही किया। क्या अब भी आपके पास और कुछ कहने के लिए है। क्या आप अपने इस कार्य पर प्रायश्चित्त करने को उद्यत है ? यदि है तो मे अभी आपके साथ भोजन करने को उद्यत हूँ।"

महाराज मानसिह महाराणा प्रताप की बात सुनकर लज्जित होने के बजाय क्रोध से भर गया। उसका बदन कॉपने लगा। वह क्रोध से पागल हो उठा।

मानसिह ने भोजन नही किया। वह बोला, "प्रताप ! तुमने मेरा अपमान किया है। इसका दण्ड आपको भुगतना होगा। मै बहुत शीघ्र आपके फिर दर्शन करूँगा।" यह कहकर मानसिह घोडे पर सवार होकर चला गया।

महाराणा प्रताप एक वीर और साहसी देशभक्त थे। कठिनाइयो से उन्होने कभी मुँह नही मोडा और आजीवन कठिनाइयाँ सहन की परन्तु वह कुशल राजनीतिज्ञ नही थे। उनके अराजनीतिज्ञ होने का पहला प्रमाण हमे उनकी शक्तिसिह से हुई झडप और अन्त मे उसे अपने राज्य से निकाल देने से प्राप्त होता है। मानसिह को अपमानित करना उनकी दूसरी

राजनैतिक भूल थी। उन्हे व्यर्थ मानसिह को अपना शत्रु नही बनाना चाहिए था। चाहे भले ही मानसिह अकबर का साथ न छोड़ता परन्तु उन्हे नम्रतापूर्वक मानसिह के सामने देशहित की कसौटी प्रस्तुत करनी चाहिए थी। उन्हे व्यर्थ ही मानसिह को इस प्रकार अपना शत्रु नही बना लेना चाहिए था। उन्हे अवसर का उपयोग करके मानसिह को अपने मार्ग पर लाने का भरसक प्रयास करना चाहिए था।

मानसिह को अपमानित करके महाराणा प्रताप ने मुगल आक्रमण की अवधि को निकट घसीट दिया। इसमे जितना भी विलम्ब होता उतनी ही उनकी शक्ति बढती और उन्हे मेवाड़ के उद्धार का अवसर प्राप्त होता।

कहा जाता है कि जब मानसिह वहाँ से चलने लगा तो कुछ मनचले सरदारो ने ताने कसकर कहा, "महाराज! जब आप दुबारा दिल्ली से लौटे तो अपने बहनोई को भी अपने साथ लेकर आएँ।"

इन वाक्यो ने मानसिह को और भी उत्तेजित कर दिया और वह वहाँ से दृढ सकल्प करके गया कि वह महाराणा प्रताप से अपने अपमान का बदला लेगा और बहुत शीघ्र लेगा।

महाराणा प्रताप ने मानसिह का अपमान करके अकबर को अवसर दे दिया कि वह दो राजपूत शक्तियो की आपस मे टक्कर करा दे। अन्त मे हुआ भी यही।

: ४ :

हल्दीघाटी का युद्ध

मानसिह ने अकबर के राजदरबार मे जाकर उससे से अपने अपमान की बात कही। उसे सुनकर अकबर मन मे बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि यह अच्छा ही हुआ जो राजपूत-राजपूत आपस मे टकरा गए। परन्तु ऊपर से क्रोध प्रदर्शित करते हुए आँखे लाल करके वह बोला, "ओह! तो प्रताप की इतनी हिम्मत बढ गई। मानसिंह! यह उसने तुम्हारा अपमान नहीं किया। यह मेरा अपमान है। और यही नही सारी मुगल सल्तनत का अपमान है। इसे कभी सहन नही किया जा सकता। तुम्हे प्रताप को इसका मजा चखाना होगा। उसके ऊँचे उठे हुए सिर को कुचलना होगा, तभी उसे अक्ल आएगी। न मालूम वह अपने आपको क्या समझने लगा है।"

महाराज मानसिंह बोले, "बादशाह सलामत, अभिमान वा मैं उसे अवश्य मजा चखाऊँगा और अपने अपमान का बदला लूंगा। उदयपुर की ईट-से-ईट न बजा दू तो मेरा नाम भी राजा मानसिह नही।"

"शाबाश राजा मानसिह ! मुझे तुमसे यही उम्मीद है तुम दो लाख फौज लेकर उस पर धावा बोलो । उसकी स‌ताकत खत्म कर दो । ऐसा कर दो कि फिर कभी सिर उठा‌की कोशिश न करे ।" अकबर बोला ।

"यही होगा बादशाह सलामत । राणा प्रताप की सब बहादुरी खाक मे न मिला दू तो मानसिह न कहना ।" मानसिह बोला ।

अकबर ने सैनिक तैयारी की आज्ञा दी । सलीम को सेनापति बनाकर मुगल सेना को महाराणा प्रताप पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया । महाराज मानसिह और शक्तिसिह उपसेनापतियो के रूप मे थे । इस सेना मे लगभग दो लाख सैनिक थे । जिधर से भी सेना निकल जाती थी तहलका मच जाता था ।

महाराणा प्रताप मानसिह को विदा करके चुपचाप नही बैठे । वह समझ गए थे कि मानसिह का इस प्रकार क्रुद्ध होकर लौटना अवश्य ही निकट भविष्य मे रंग लाएगा । उन्होने अपनी जो कुछ भी सेना थी उसे सगठित किया और आक्रमण का सामना करने की तैयारी पर जुट गए । उनके मित्र राजपूत राजे भी कोमलमीर दुर्ग मे अपनी सेनाओ को लेकर आ गए ।

मुगल सेना का आकार बहुत विशाल था । वह राजस्थान के बड़े-बड़े नगरो से होकर मेवाड़ की दिशा मे बढ़ रही थी । मानसिह को विश्वास था कि महाराणा प्रताप मुगल सेना का सामना नही करेगा क्योकि कहाँ राणा प्रताप की छोटी-सी

सेना और कहाँ दो लाख सैनिको से युक्त, अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित मुगल सेना। वह निर्भीक मस्त हाथी के समान आगे-आगे बढ रही थी।

महाराणा प्रताप ने हल्दीघाटी के मैदान को मुगल सेना से मोर्चा लेने के लिए उपयुक्त समझकर अपनी सेना को वहाँ स्थापित कर दिया। इस मैदान के दो ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत है। वहाँ पहुँचने के लिए एक सँकरी घाटी से होकर गुजरना होता है। महाराणा प्रताप ने इस घाटी के ऊपरवाले पर्वतो पर वीर भीलो को छिपा दिया। उनके पास पत्थरो के बडे-बडे ढेर लगवा दिए जिससे शाही सेना के वहाँ से गुजरते समय उनपर पत्थरो की करारी वर्षा हो सके।

महाराणा प्रताप के पास केवल बाईस हजार सेना थी। मुगलो की दो लाख सेना के समक्ष महाराणा प्रताप की सेना दाल मे नमक के समान थी। मुगलो की सेना ने ज्योही घाटी मे प्रवेश किया त्योही पहाडो पर से भीलो ने पत्थरो की वर्षा की और घाटी के अन्दर से महाराणा प्रताप के वीरो ने तीरो की। बात-की-बात मे हजारो मुगल सैनिक मैदान मे बिछ गए।

मुगल सेना की दशा बिगडती देखकर मानसिह ने अपनी सेना को तीव्रगति के साथ घाटी को पार करने की आज्ञा दी। मुगल सेना पत्थरो से घायल होती हुई आगे बढने लगी और मैदान मे पहुँच गई।

मैदान मे पहुँचकर मुगल सेना ने अपने पैर जमाए और जमकर शत्रु का सामना करने को तैयार हुई। दोनो ओर से वार-पर-वार होने लगे। दोनो का जमकर मुकाबिला हुआ। महाराणा के वीर सैनिक भूखे सिह के समान शत्रु-सेना पर टूट पडे। एक-एक ने कई-कई को मौत के घाट उतार दिया। घमासान युद्ध हुआ।

महाराणा प्रताप अपने घोडे चेतक पर सवार थे। वह जिधर से भी निकल जाते थे मुगल सैनिको के शवो का ढेर लग जाता था। शव-पर-शव पट जाता था। राणा शत्रुओ को गाजर-मूली की तरह काट-काट कर फेंक रहे थे। मुसलमानों को राणा अपने काल के समान प्रतीत होते थे।

युद्ध करते-करते राणा प्रताप को देशद्रोही मानसिह का ध्यान आया। उन्होने इधर-उधर गर्दन घुमाकर देखा तो मानसिह हाथी की अम्बारी मे बैठा था। उन्होने अपना घोडा उसी दिशा में मोड दिया। राणा का घोडा चेतक सीधा दौड़ कर हाथी पर झपटा। राणा प्रताप ने ताक कर अपना भाला मानसिह की ओर फेका परन्तु सौभाग्य था उसका कि भाला हाथी के मस्तक पर लगा और मानसिह के प्राण बच गए। हाथी चिघाड़ता हुआ रणभूमि से भाग निकला।

महाराणा प्रताप विद्युत-गति से युद्ध-क्षेत्र मे इधर से-उधर घूम रहे थे। वह जिधर से भी निकल जाते थे, शत्रु-सेना काई के समान फटती चली जाती थी। उनके सामने आने का किसी मे भी साहस नही था। तभी उनकी दृष्टि सलीम के

हाथी पर पडी । महाराणा प्रताप मुगल सैनिको को चीरते हुए सलीम के हाथी के पास जा पहुँचे ।

चेतक ने लपककर अपने आगे के दोनो पैर हाथी के मस्तक पर जमा दिए । महाराणा प्रताप ने सलीम को निशाना बनाकर पूरे जोर से उस पर भाला मारा परन्तु महावत बीच मे आ गया । महावत नीचे गिर गया और सलीम के प्राणो की रक्षा हो गई । पीछे से मुगल सैनिको ने एक साथ मिलकर महाराणा प्रताप पर आक्रमण कर दिया । महाराणा प्रताप आँधी की तरह उन पर झपटे तो मैदान साफ दिखाई दिया ।

महाराणा प्रताप के बदन पर कई घाव आ चुके थे । झाला का राणा मन्नासिह महाराणा प्रताप के साथियो मे से था । उसने भी युद्ध मे भयकर मार-काट मचाई हुई थी । उसने देखा कि महाराणा प्रताप थके हुए है और मुगल सैनिक उनकी घात मे है । वह तुरन्त भागकर महाराणा प्रताप के निकट आ गए और उन्होने महाराणा का छत्र उठाकर अपने सिर पर रख लिया । वह महाराणा प्रताप से बोले, "आप बहुत थक गए है । अब आपको युद्ध नही करना चाहिए । यदि आपको यहाँ कुछ हो गया तो फिर मेवाड को मुगलो से बचाने वाला कोई नही रहेगा ।

महाराणा प्रताप मन्नासिह का बहुत आदर करते थे । वह उनके आग्रह को टाल न सके और उन्होने अपना घोडा एक ओर को फेर लिया ।

मुगल सैनिको ने मन्नासिह को महाराणा प्रताप समझकर

उन पर भयकर आक्रमण किया। मन्नासिह बहुत वीरता के साथ लडे परन्तु आक्रमण इतना भयकर था कि वह उसके वेग को न सँभाल सके और उनका प्राणान्त हो गया।

सध्या समय हो चुका था। युद्ध मे काफी राजपूत मारे जा चुके थे। मुगल सेना की भी दशा अच्छी नही थी। उनके सैनिक थककर चूर हो गए थे। मैदान से जाने वाले राजपूतो का पीछा करना उनके वश की बात नही थी।

महाराणा प्रताप अवसर देख कर घाटी मे एक ओर को बढ चले। उन्होने जैसे ही दिशा बदली वैसे ही दो मुगल सैनिको की उन पर दृष्टि पड गई। उन्होने राणा का पीछा करना आरम्भ किया। वे समझ चुके थे कि राणा घायल है और थके हुए है। उन्होने अपने घोडे राणा के पीछे डाल दिए।

शक्तिसिह दूर से खड़ा हुआ यह दृश्य देख रहा था। उसने मुगल सैनिकों को राणा का पीछा करते देखा तो उसके अन्दर भाई का रक्त उबाल खा गया। उसने तुरन्त अपना घोडा उन दो मुगल सैनिको के पीछे डाल दिया।

शक्तिसिंह ने अपने घोड़े की गति को तीव्र किया और वह बहुत शीघ्र उन मुगल सैनिको के निकट पहुँच गया जो महाराणा प्रताप का पीछा कर रहे थे। शक्तिसिह ने उन दोनो मुगलो को मौत के घाट उतार दिया।

महाराणा प्रताप के साथ-साथ उनका घोड़ा चेतक भी घायल हो चुका था। उनके मार्ग मे एक बरसाती नाला आया

श्रौर चेतक ने उगे फांदने को छलाग लगाई तो उसका पैर रपट गया। उसका सीना फट गया।

महाराणा प्रताप को चेतक के मरने का अत्यन्त खेद हुश्रा। उसी समय उन्होने देखा कि उनका भाई शक्तिसिह श्रा रहा था। राणा ने समझा कि शक्तिसिह उनपर श्राक्रमण करने के लिए श्रा रहा था। वह बोला, "शक्तिसिह श्राश्रो! मुझसे दो हाथ करके श्रपना बदला चुकाश्रो।"

महाराणा की बात सुनकर शक्तिसिह की श्राँखो से श्राँसू बह चले। वह महाराणा प्रताप के चरणो पर गिर पडा श्रौर कातर वाणी मे बोला, 'भय्या! मेरा श्रपराध क्षमा करो। मैंने श्रापका पीछा करते हुए दो मुगल सैनिको को देखा तो मुझसे रहा नही गया। मैने श्रपना घोडा उनके पीछे छोड दिया। वह देखो उन दोनो को मृत्यु के घाट उतार कर श्रा रहा हूँ।"

महाराणा प्रताप ने शक्तिसिह को श्रपनी छाती से लगा-लिया। शक्तिसिह श्रकबर के पास नही गया। उसने श्राजीवन श्रपने भाई के साथ रहकर मातृभूमि की ही सेवा करने का व्रत लिया।

कुछ देर पश्चात् चेतक का प्राणान्त हो गया। महाराणा की श्राँखो मे श्रपने प्यारे चेतक को मरता देखकर श्राँसू श्रा गए। राणा ने बाद मे चेतक की स्मृति मे वहाँ एक चबूतरा बनवाया। वह चबूतरा श्राज भी उसी स्थान पर बना हुश्रा है।

: ५ :

विपत्ति काल

हल्दीघाटी का युद्ध भारतीय इतिहास की वह घटना है जिसे युग-युग तक कभी भुलाया नही जा सकता। भारतीय इतिहास मे शायद ही ऐसा कोई युद्ध हुआ हो जिसमे इतने कम सैनिको ने इतनी बडी सेना का इस तरह जमकर मुकाबिला किया हो और उसके दाँत खट्टे कर दिए हो।

महाराणा प्रताप शक्तिसिह और अपने बचे हुए सैनिको के साथ हल्दीघाटी से कोमलमेर दुर्ग मे चले गए। अब उनके पास न तो सेना ही शेष थी और न धन ही। यदि धन होता तो वह उसकी सहायता से दुबारा सेना एकत्रित कर सकते थे।

अकबर ने सोचा कि इस समय को हाथ से नही खोना चाहिए। उसने तुरन्त शाहबाजखाँ को एक जबरदस्त सेना लेकर महाराणा प्रताप को चारो ओर से घेर लेने के लिए भेजा।

शाहबाजखाँ की सेना ने कोमलमेर का दुर्ग चारो ओर से घेर लिया। महाराणा प्रताप साहसी वीर थे। आपत्ति से घबराना उन्होने सीखा ही नही था। वह बडी धीरता से अपत्ति का सामना करते थे।

महाराणा प्रताप ने मुगलो के घेरे की कोई चिन्ता न की। वह अन्दर से ही मुगल सेना का मुकाबिला करते रहे परन्तु दुर्भाग्यवश उस वर्ष ऐसी सूखा पडी कि दुर्ग के अन्दर के कुओ का पानी सूख गया। पानी की समस्या ने राणा को बेचैन बना दिया।

दुर्ग के निकट एक कुआ था, जिसमे पानी था। परन्तु उसके पानी मे आबू नरेश, ने जो महाराणा प्रताप से शत्रुता रखता था विष मिलवा दिया। ऐसी स्थिति मे महाराणा प्रताप कोमल मेर गढ को छोडने पर मजबूर हो गए। एक दिन अर्ध रात्रि मे राणा उस गढ को छोडकर मुगल सेना से आंख बचाकर 'चप्पन' पर्वत पर चले गए। चप्पन पर्वत पर बसने वाले भीलो ने महाराणा प्रताप की सहायता की। उन्ही की सहायता से महाराणा वहाँ बस गए।

अकबर के गुप्तचर चप्पा-चप्पा पर छाए हुए थे। धीरे-धीरे उन गुप्तचरो ने महाराणा प्रताप के रहने का वह ठिकाना भी ज्ञात कर लिया जहाँ वह अपने बाल-बच्चो के साथ विपत्ति के दिन काट रहे थे।

मुगल सेना ने अवसर का लाभ उठाकर महाराणा को उस पहाडी पर घेर लिया। महाराणा प्रताप के पास अब केवल मुट्ठी भर सैनिक थे। उन्होने उन्ही की सहायता से अपनी रक्षा की और वह अवसर देखकर वहाँ से भी प्रस्थान कर गए।

इस प्रकार महाराणा प्रताप ने कई स्थान बदले परन्तु जहाँ भी पहुँचते थे वहो पर पता निकालकर मुगल सेना पहुँच जाती थी और राणा को वह स्थान छोडना पडता था। महाराणा प्रताप इस समय ऐसी दशा मे थे कि कभी-कभी तो उन्हे भोजन छोड़कर स्थान छोड देना पडता था। कई-कई दिन उन्हे भोजन किए हो जाते थे। अपने बच्चों को वह अपनी आँखो के समक्ष भूख और प्यास से तडपते हुए देखते थे और खून का घूंट पीकर रह जाते थे।

एक दिन महाराणा प्रताप एक बहुत घने जगल मे बैठे थे। सोच रहे थे कि इस प्रकार वह मेवाड का उद्धार कैसे कर सकेगे। राणा इसी चिता में बैठे थे कि भीलो ने उन्हे आकर सूचना दी, "महाराणा ! मुगल सेना आ रही है। शीघ्र कोई रक्षा का उपाय सोचिए।"

महाराणा प्रताप ने अपने बाल-बच्चो को भीलो की सुरक्षा मे दे दिया जिससे वे उन्हे कही सुरक्षित स्थान पर पहुँचा सके। आप मुगलो से युद्ध करने लगे।

भीलो ने महाराणा के बच्चो को टोकरियो मे रखकर वृक्षो पर लटका दिया और स्वय उनके पहरेदार बनकर वही इधर-उधर खडे हो गये। महाराणा प्रताप ने अपने घोडे से सैनिको की सहायता से ही आक्रमणकारी मुगल सैनिक टुकडी को भगा दिया।

मुगल सैनिको के भाग जाने पर राणा ने वह स्थान भी छोड दिया।

महाराणा प्रताप ने घने जगलो के बीच एक पर्वत कन्दरा मे जाकर रहना आरम्भ किया। एक बार ऐसा अन्न-सकट हुआ कि भोजन किए कई दिन हो गए। तब महाराणा कही से कुछ जगली घास उखाड कर लाए और उसकी रोटियाँ बनवाई।

सबने अपना-अपना भाग खा लिया परतु छोटी लडकी उस समय सोई हुई थी। माता ने उसका भाग उठा कर रख दिया। जब बच्ची सोकर उठी तो माता ने वह टुकडा बच्ची के हाथ मे दे दिया। बच्ची उस टुकडे को खाने लगी तो कही बच्ची से एक बन-बिलाव आगया और उसने झपटकर बच्ची के हाथ से टुकडा छीन लिया। बच्ची रोती रह गई।

इस दृश्य को देखकर महाराणा प्रताप का हृदय विदीर्ण हो उठा। उनके नेत्रो से आँसू टपकने लगे। वह अपने बच्चो को इस प्रकार भूख-प्यास से तडपना देखकर धैय धारण न कर सके। उन्होने आपत्ति से घबराकर उसी समय अकबर को एक पत्र लिखा, "अकबर! कष्ट पराकाष्ठा को पहुँच गए। अब सहन नही होता। मै अपना हठ छोड रहा हूँ।"

महाराणा का दूत यह पत्र लेकर अकबर के दरबार मे पहुँचा तो अकबर की प्रसन्नता का पारावार न रहा। उसने प्रताप के पत्र को अपने दरबार में सब समन्तो के सामने पढकर सुनाया। उसे सुनकर कुछ मुस्कराए, कुछ ने मूछों पर ताव दिया, कुछ के सीने पर उभार आया परन्तु कविवर पृथ्वीराज जो फिर अकबर के दरबार का कवि था। इस पत्र को सहन सहन न कर सके। उनका हृदय विदीर्ण हो उठा। उनका दिल रो पडा। उनकी आँखो के सामने अधकार छा गया।

पृथ्वीराज आगे वढकर सीधा अकबर के निकट पहुँचा और उस पत्र को अपने हाथ मे लेकर बोला, "शाहशाह आजम! यह पत्र महाराणा प्रताप का नही है। मैं उनकी लिखावट

पहचानता हूँ। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह लेख उनका नही है। यह पत्र किसी ने आपको प्रसन्न करने के अभिप्राय से लिखकर भेजा है। यदि आप आज्ञा करे तो मैं महाराणा प्रताप को पत्र लिखकर इस पत्र की सचाई ज्ञात करूँ।"

पृथ्वीराज की बात सुनकर अकबर को भी सशय होने लगा। वह पृथ्वीराज से बोले, "कविवर! तम तुरन्त राणा को पत्र लिखकर इसका रहस्य ज्ञात करो।"

कविवर पृक्ष्वीराज ने महाराणा प्रताप को ओजस्विनी भाषा मे एक ऐसा पत्र लिखा जिसका आशय अकबर न समझ सके। उस पत्र मे कवि ने महाराणा प्रताप के आत्म-सम्मान को ललकार कर उन्हे उनके प्रण की याद दिलाई। उनके खोए हुए साहस को फिर से लौटाया और कहा, "महाराणा! यह भूल कदापि न करना। अकबर के दरवार मे आकर फिर अपमानित होकर प्राण देने के अतिरिक्त और कुछ शेष न रहेगा। यदि प्राण ही देने है तो स्वतन्त्रतापूर्वक अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करते हुए प्राण दीजिए। मुगलो की कैद मे सडकर मरने तो से वह हजार दर्जे बेहतर होगा।"

कविवर पृथ्वीराज का पत्र पढकर राणा प्रताप के नेत्र खुल गए। उन्हे अपनी भूल प्रकट हुई। उन्होने दृढ निश्चय कर लिया कि अब चाहे जो विपत्ति भी उन पर पडे, अकबर के सामने झुकेगे नही। उन्होने अपना निश्चय बदल दिया और मन-ही-मन पृथ्वीराज की सराहना की कि जिसने मुगल दरबार मे उन्हे अपमानित होने से बचा लिया।

महाराणा ने एक पत्र किसी अन्य व्यक्ति के हाथ से लिखा कर अकबर के दरबार मे भेजा, जिसमे लिखा था, "प्रताप इस जीवन मे कभी किसी की आधीनता स्वीकार नही कर सकता।"

यह पत्र जब अकबर के दरबार मे पहुँचा तो अकबर ने कविवर पृथ्वीराज से उसे पढवाया। पत्र हाथ मे आते ही पृथ्वीराज उसका लेख देखकर बोले, "शहशाहे आलम ! यह पत्र महाराणा प्रताप के हाथ का लिखा हुआ है। आप इसे उस पहले पत्र से मिलाकर देखिए इसका लेख उससे कितना भिन्न है।"

अकबर ने दोनो पत्रो का लेख मिलाकर देखा तो वास्तव मे उन लेखो मे भिन्नता थी। अब अकबर को सदेह न रहा कि पहला पत्र किसी ने उसे मूर्ख बनाने के लिए लिख दिया था। वह पत्र राणा प्रताप का लिखा हुआ नही था।

: ६ :

भामाशाह का त्याग

कवि पृथ्वीराज के पत्र ने महाराणा प्रताप के अन्दर फिर से नए जोश का संचार किया। उनकी नसों मे फिर से जोशीला रक्त दौड़ने लगा। उनके नेत्रों के सामने मातृभूमि का चित्र नाच उठा। उसके उद्धार की प्रतिज्ञा उन्हे याद आई।

महाराणा प्रताप बचे-खुचे वीरों को एकत्रित करके बोले, "वीरो! हमें अब यह स्थान छोडकर सिधु नदी की ओर प्रस्थान करना चाहिए। यहाँ रहकर हम दुबारा शक्ति का संगठन नही कर सकेगे। यहाँ मुगलो के सैनिक कुत्तो की तरह हर समय हमारे पीछे दौड़ते रहते है।"

महाराणा प्रताप ने यह स्थान भी छोड दिया और सिधु की ओर प्रस्थान किया। चलते चलते महाराणा प्रताप ऋषभ-देव के निकट पहुँचे। वहाँ वह जगल मे अपने साथियो के पास बैठे आपस मे बातचीत कर रहे थे। उसी समय एक सैनिक ने उन्हे आकर सूचना दी, "एक वद्ध व्यक्ति आपसे भेंट करना चाहता है।"

महाराणा ने सैनिक को आज्ञा दी, "उन्हे आदरपूर्वक यहाँ ले आओ।"

सैनिक थोडी देर पश्चात् उस वृद्ध व्यक्ति को अपने साथ लेकर लौटा तो महाराणा प्रताप आश्चर्यचकित रह गए। महाराणा प्रताप ने खडे होकर उनका स्वागत किया। यह महाराणा के पिताजी के कोषाध्यक्ष भामाशाह थे।

जब से चित्तौड छोडा था उसके पश्चात् यह उनकी प्रथम भेट थी। भामाशाह ने कहा, "महाराणा को यहाँ देखकर मैं धन्य हुआ। आप मेरी कुटी को चलकर पवित्र करने की कृपा करे।"

भामाशाह इन दिनो ऋषभदेव मे ही रहते थे।

महाराणा प्रताप अपने साथियो के साथ भामाशाह के घर

पहुँचे। वहाँ जाकर महाराणा प्रताप ने भामाशाह को अपने सकट के सस्मरण सुनाए तो भामाशाह की आँखो मे आँसू आ गए। वह विह्वल हो उठे।

भामाशाह बोले, "महाराज! मेरे पास पचास हजार मोहर है। आप ये सब ले ले और मातृभूमि के उद्धार के लिए दुबारा सेना एकत्रित करे। मेरा अहोभाग्य कि आप मेरी कुटी पर पधारे। मेरा यह रुपया मेरा नही है महाराज! यह सब मैंने और मेरे पूर्वजो ने मेवाड से ही एकत्रित किया है। यह मेवाड की पूँजी मेवाड के उद्धार मे काम आए, यही मेरी हार्दिक इच्छा है।"

भामाशाह की बात सुनकर महाराणा प्रताप और उनके सब साथियो का साहस लौट आया उनकी नसो मे साहस लहरे मारने लगा। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उनकी यह यात्रा सफल हो गई।

महाराणा को धन लेने मे पहले तो कुछ सकोच-सा हुआ परन्तु जब भामाशाह ने कोष की कुजी उनके चरणो पर डाल कर कहा, "महाराज! इस धन से अब मेरा कोई सम्बन्ध नही रहा। आप इससे सेना एकत्रित करे और विश्वास रखे कि

यदि आवश्यकता हुई तो आपका यह सेवक इतना ही धन आपके इस शुभ कार्य के लिए और एकत्रित कर देगा।"

महाराणा ने भामाशाह की कौली भरकर कहा, 'भामाशाह तुम धन्य हो ! आज भारत को ऐसे ही दानियो की आवश्यकता है।"

भामाशाह से प्राप्त धन से महाराणा प्रताप ने दुबारा सेना एकत्रित की। विशाल सेना एकत्रित करके राणा ने लौटकर शाहबाज खाँ पर दलबीर नामक स्थान पर आक्रमण किया। शाहबाज खाँ निश्चिन्त पडा सो रहा था। उसे स्वप्न मे भी ध्यान नही था कि महाराणा प्रताप उस पर आक्रमण कर सकते है। इस अचानक आक्रमण से शाहबाज खाँ के होश उड गए। मुगल सेना भाग खडी हुई।

शाहबाज खाँ की इस पराजय से महाराणा प्रताप के साथियो का हौसला बढ गया। हल्दीघाटी पर तितर-बितर हुए राजपूतो को जब यह ज्ञात हुआ कि राणा प्रताप ने दुबारा सैन्य-सगठन कर लिया है तो वे भी आकर उनसे मिलने लगे। राणा की सैनिक शक्ति फिर से सुदृढ हो गई।

महाराणा प्रताप ने दूसरा आक्रमण आमेर के किले पर किया। इस किले को राणा ने बहुत शीघ्र जीत लिया। इस

प्रकार महाराणा प्रताप ने बत्तीस किलो पर अधिकार किया। महाराणा प्रताप ने अपने और अपने पिता के सभी खोए हुए किलो को जीत लिया, केवल चित्तौड और माडलगढ के किले शेष रह गए। इन दो किलो के अतिरिक्त सारा मेवाड़ महाराणा प्रताप के अधिकार मे आ गया।

महाराणा प्रताप जिस समय राज-सिहासन पर बैठे थे तो उन्होने चित्तौड गढ को जीतने की प्रतिज्ञा की थी। वह अभी भी मुगलो के अधिकार मे था। महाराणा प्रताप चित्तौड़ गढ पर आक्रमण करने की तैयारी कर ही रहे थे कि विधाता प्रतिकूल पड़ गया। सन् १६५३ मे वह बीमार पड़ गए और बीमारी इतनी भयकर हुई कि उसने प्राण लेकर ही उन्हे मुक्त किया।

महाराणा प्रताप अपनी इस इच्छा को पूण न कर सके। मृत्यु-समय महाराणा ने अपने पुत्र अमरसिंह को बुलाकर कहा, "बेटा अमरसिंह! मैंने गद्दी पर बैठते समय चित्तौड़ को स्वाधीन करने की प्रतिज्ञा की थी। मै उसे पूरा न कर सका और मृत्यु ने मुझे आ घेरा। अब तुम मेरे बाद इस कार्य को पूर्ण करना।"

अमरसिंह ने प्रतिज्ञा की, "पिताजी! आप चिंता न करे मैं चित्तौड को स्वतन्त्र किए विना चैन से न बैठूगा।"

अमरसिंह की प्रतिज्ञा सुनकर महाराणा की आत्मा को शांति मिली। उन्होंने शान्तिपूर्वक प्राण-विसर्जन किया।

महाराणा भारतीय इतिहास के उन वीरों में से है जिन पर राष्ट्र को सर्वदा गर्व रहेगा।

शिवाजी

१

शिवाजी

बाल काल

औरंगजेब के शासन-काल मे दक्षिण भारत मे बीजापुर की एक रियासत थी। बीजापुर का शासक मुहम्मद आदिलशाह था। इसकी रियासत मे शाहजी भी एक पदाधिकारी थे। उनकी पत्नी का नाम जीजाबाई थी।

सन् 1627 की 10 अप्रैल को जीजाबाई के गर्भ मे एक बालक ने जन्म लिया। उसका नाम शिवाजी रखा गया। यही वह बालक था जिसने भारतीय इतिहास मे छत्रपति शिवाजी के नाम से ख्याति प्राप्त की।

शाहजी एक वीर पुरुष थे। धर्म में उनकी अटूट आस्था थी। वह नित्य नियम से पूजा करते थे। जीजाबाई भी धर्म-निष्ठ स्त्री थी। इसीलिए बचपन से उन्होंने अपने पुत्र को

धर्म परायण बनाया और शिवाजी के हृदय मे धर्म-निष्टा जागरूक हो उठी।

शिवाजी के जन्म के पश्चात् शाहजी ने अपनी दूसरी शादी कर ली। शिवाजी की माता जीजाबाई अपने पति के दूसरी शादी करने पर शिवनेर से पूना चली आई। पूना आकर माता जीजाबाई ने शिवाजी की शिक्षा का भार गुरु कोडदेव जी को सौप दिया। गुरु कोडदेव धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे और भारत मुगलो के आधीन देखकर उनकी आत्मा को महान् कष्ट होता था। वह वीर और साहसी व्यक्ति थे। शिवाजी के व्यक्तित्व को वीरता और धर्म-परायणता के साँचे मे ढालने मे आपका ही सबसे महत्वपूर्ण योगदान रहा।

शिवाजी बचपन से ही बहुत चपल, साहसी, खिलाडी और वीर प्रवृत्तियो से युक्त थे। स्वाधीनता उन्हे प्रिय थी और दासता के प्रति मन मे कुढन थी। माता जीजाबाई भी निर्भीक प्रकृति की स्त्री थी। उन्होने बचपन से ही उन्हे वीरता का पाठ पढाया था। वीर और साहसी पुरुषो की कहानियाँ वह उन्हे सुनाया करती थी।

शिवाजी के गुरु कोडदेव ने भी उन्हे वीरता का पाठ पढाया। आदर्श पुरुषो की कथाये उन्हे जबानी याद कराई। शिवाजी को पुस्तको के पठन से कोई विशेष प्रेम नही था परन्तु वीर पुरुषो की कहानियाँ वह बड़े चाव से पढते थे। उनके पढ़ने

से उनके हृदय मे वीरता का सचार होता था। उनके मन मे यह भावना पैदा होती थी कि उन वीर पुरुषो ने जैसे-जैसे वीरतापूर्ण कार्य किये थे, वैसे ही वह भी करे।

शिवाजी बचपन मे पूना के पर्वतो पर घूमने जाया करते थे। वह जगली मालवीय जाति के बच्चो के साथ खेला करते थे। इसी खेल-कूद मे वह व्यूह रचना किया करते थे। ये मालवीय लोग शिवाजी को बहुत प्यार करते थे। उनके बच्चे उनसे मित्रता-भाव रखने लगे थे और उनके माता-पिता उनके भक्त हो गए थे।

शिवाजी मालवीय बालको के साथ आधी-आधी रात तक जगल और पहाड़ो मे घूमते रहते थे। वह इतने निर्भीक थे कि घने-से-घने जगलो मे भी रात्रि को जाने मे उन्हे लेशमात्र भी कभी भय प्रतीत नही होता था। कभी-कभी वह कई-कई दिन तक जगलो मे ही घूमते रहते थे और घर नही लौटते थे।

एक बार जब वह कई दिन तक जगलो से नही लौटे तो लोग-बागो की यह धारणा बनी कि शिवाजी जगली डाकुओ के गिरोह मे मिल गए। परन्तु फिर उनके लौटने पर यह भ्रम दूर हो गया।

शिवाजी के हृदय मे देश प्रेम की ज्वाला जल रही थी। बाल्य-काल से ही उनके हर आचरण से स्वाधीन प्रेम की झलक मिलती थी।

एक दिन शिवाजी अपने पिता के साथ बीजापुर के राज दरबार मे गए। शाहजी उन्हे अपने साथ इसलिए ले गए थे जिससे वह राज दरबार के नियमो से परिचय प्राप्त कर सके परन्तु हुआ इसके ठीक विपरीत। शिवाजी ने वहाँ जाकर राज दरबार के एक नियम का पालन न किया। उन्होने वहाँ के सभी नियमो का उल्लघन किया। यहाँ तक कि शिवाजी ने शाह के सामने जाकर सिर झुकाना भी पसद न किया।

शिवाजी को बीजापुर के राज दरबार मे जाकर आत्म-ग्लानि हुई। उनकी आत्मा को कष्ट हुआ और हृदय मे एक जलन-सी पैदा हो गई। उन्होने घर वापस लौटकर अपने सब वस्त्र बदले और स्नान करके अपने को पवित्र किया।

शिवाजी का यह आचरण देखकर शाहजी को बहुत आश्चर्य हुआ। शिवाजी की माता जीजाबाई ने स्नान करने का कारण पूछा तो शिवाजी निर्भीकतापूर्वक बोले, "माँ! मै म्लेक्ष राजा के दरबार मे जाकर अपवित्र हो गया था। अपने शरीर की शुद्धि के लिए क्या मुझे स्नान नही करना चाहिए था?"

माता जीजाबाई ने अपने पुत्र की भावना का आदर किया। उनके गुरु कोडदेव से जब जीजाबाई ने यह बात कही तो वह बोले, "शिवा एक बहुत ही होनहार बालक है जीजाबाई! इसके भविष्य के विषय मे अभी मैं कोई कल्पना नही कर सकता परन्तु इतना तो निश्चय ही है कि इसके द्वारा कोई महान् कार्य होगा। यह धर्म की रक्षा करेगा।"

गुरु कोडदेव की बात सुनकर माता जीजाबाई को हार्दिक संतोष हुआ। उन्हे अपनी कोख पर गर्व था कि उसने ऐसे होनहार बालक को जन्म दिया।

शिवाजी के बाल-काल की झॉकियो को देखकर उनके भविष्य की सहज ही कल्पना की जा सकती थी। उनके भावी जीवन का कार्य-क्रम उनकी बाल-काल की क्रीडाओ से झॉकता प्रतीत होता था। उनके जीवन की महत्वाकाक्षा उनके बचपन की प्रत्येक क्रीडा मे झाकती प्रतीत होती थी।

शिवाजी बचपन से ही मालवियो को सगठित करके आस-पास के दुर्गो को जीतने का विचार करते थे। शिवाजी के मन मे बचपन से ही अपना राज्य स्थापित करने की आकाक्षा थी। वह जब केवल तेरह वर्ष के थे तभी से राज्य का स्वप्न उनके मस्तिष्क मे झूलने लगा था।

एक बार शिवाजी ने बचपन मे ही एक मुहर बनवाई। उस पर लिखा था, "चॉद कितना छोटा निकलता है। दूज का चॉद एक हल्की-सी फाँक जैसा होता है परन्तु धीरे-धीरे वह एक दिन बढकर पूर्णमासी का पूरा चाँद बन जाता है। इसी तरह राज्य भी छोटे से बडा बनता है।"

यह भावना उनके मन में उस समय थी जब वह तेरह वर्ष के थे। एक तेरह वर्ष का बालक राज्य स्थापित करने की कल्पना कर रहा था। बीजापुर के राज दरबार मे जाकर उसके आत्म सम्मान को ठेस लगा। उसने वहाँ के नवाब के

सामने सिर नही झुकाया। घर पर आकर उसने स्नान किया।
ये सब लक्षण एक साधारण बालक के नही थे। इन सब आचरणो से शिवाजी की विशेष प्रतिभा और विशेष महत्वा-कांक्षा की झाँकी मिलती है। इसी प्रकार की घटनाओ से प्रभावित होकर किसी ने कहा है, "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।"

२

शाहजी की मुक्ति

जब शिवाजी बीस वर्ष की आयु को प्राप्त हुए तो आपने राज्य स्थापना का दृढ सकल्प कर प्रथम युद्ध के लिए उद्यत हुए। उनके अन्दर राज्य सस्थापन की जो महत्वाकांक्षा थी उसका प्रथम सकेत इनके इसी कार्य से प्राप्त होता है।

शिवाजी ने अपने तीन साथियो और लगभग एक हजार सैनिको को लेकर बीस वर्ष की आयु मे बीजापुर के प्रसिद्ध दुर्ग 'तोरण' पर आक्रमण किया। इस कार्य मे आपको सफलता मिली और बिना अधिक परिश्रम और मारकाट के ही यह दुर्ग आपके अधिकार मे आ गया।

शिवाजी ने सुना था कि 'तोरण' दुर्ग मे बीजापुर नवाब का बहुत बडा खजाना है। शिवाजी ने दुर्ग पर अधिकार करते ही उसकी खुदाई आरम्भ करा दी और वह खजाना आपको

मिल गया। इस खजाने को प्राप्त कर मराठा वीरो को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होने विशेष समारोह मे भवानी की पूजा की और उनके चरणो पर वह खजाना रखकर शिवाजी ने प्रतिज्ञा की कि उसकी सहायता से वह हिन्दुत्व को रक्षा करेगा, भारत भूमि को यवनो से मुक्त करके और गऊ तथा ब्राह्मणो की रक्षा करेगा।

आस-पास की जनता मे यह समाचार फैल गया कि भवानी ने अपने भक्त शिवाजी को हिन्दुत्व के उद्धार के लिए बहुत बडा खजाना दिया है। इससे लोगो मे शिवाजी के प्रति श्रद्धा की भावना जाग्रत हो गई। लोग शिवाजी को अवतार समझने लगे और उनकी शिवाजी मे आस्था बढने लगी। 'तोरण' दुर्ग को जीतने से शिवाजी को प्रतिष्ठा को एकदम चार चाँद लग गए। उनका यश दक्षिण भारत मे चारो ओर फैलने लगा। शिवाजी का उत्साह भी इस विजय से दिन-दूना और रात-चौगुना बढने लगा।

'तोरण' दुर्ग से प्राप्त धन से शिवाजी ने आस-पास के टूटे फूटे दुर्गो की मरम्मत कराई और उन्हे शत्रु का सामना करने योग्य बना लिया। वहाँ से छै मील की दूरी पर लोह-वध नामक एक पहाडी थी। उस पर 'राजगढ' नामक दुर्ग बनाया गया। इस दुर्ग को 'अजेय दुर्ग' कहकर शिवाजी ने उद्घाटन किया। वही पर शिवाजी ने सेना की नई भर्ती आरम्भ की। मुसलमानो के अत्याचारो से तग आए हुए मराठे झड-

के-झुंड आकर वीर शिवाजी की सेना मे भर्ती होने लगे। शिवाजी उनकी दृष्टि मे धर्म-रक्षक राष्ट्रीय नेता था। उसके सकेत पर वह प्राणो की बाजी लगा देने को उद्यत थे।

शिवाजी ने अपनी शक्ति का सगठन किया। छापेमार सेना तय्यार की, जिसका कार्य यह था। जहाँ भी वे थोडे बहुत मुसलमान सेनिको को देखते थे, उन्हे लूट लेते थे और उनके हथियार तथा जो धन उनसे प्राप्त होता था उसे लाकर सरकारी खजाने मे जमा करा देते थे। इस छापेमार सेना ने बीजापुर गोलकुडा की रियासत का सत्र प्रबन्ध खराब कर डाला। रियासत के रहने वाले अपने आपको असुरक्षित समझने लगे।

शिवाजी ने बहुत ही कम समय मे सूपा, चाकरण, पुरन्दर और कोकरण के किलो पर अपना अधिकार जमा लिया। मराठा सेना का विस्तार चारो ओर होने लगा। इन दुर्गो मे मराठा सेनिक रहते थे और समय-बे-समय वे इधर-उधर छापे मारकर धन, श्रम और हथियार एकत्रित करते थे। इस प्रकार इन्होने अपने पास पर्याप्त हथियारो का भण्डार एकत्रित कर लिया।

इस समय तक कल्यारण और कोलाबा के लगभग आधा दर्जन किलो पर शिवाजी का अधिकार हो चुका था। उनके नाम की धाक चारो ओर फैल गई थी। मुसलमानी रियासतो

के नवाब उनके नाम से थर्राने लगे थे। रायगढ पर पहले ही उन्होने अपना अधिकार कर लिया था।

शिवाजी ने जितनी सफलता की कल्पना भी नही की थी उससे अधिक सफलता उन्हे मिली। महत्वाकाक्षी वह थे ही। उनकी महत्वाकाँक्षाएँ बराबर बढती ही गई। जो कुछ उन्होने प्राप्त कर लिया था। उससे ही वह सतुष्ट होने वाले नही थे।

शिवाजी की इन विजयो का समाचार बीजापुर दरबार मे पहुँचा तो वहाँ को नवाब मुहम्मद आदिलशाह बहुत बिगडे। उन्होने शाहजी को तुरन्त अपने पास बुलवाकर कहा, "शाहजी! सुने आपने कुछ अपने सपूत शिवाजी के कारनामे। वह तो राजा बनने का ख्वाब देख रहा है। उसने हमारे खिलाफ बगावत का झण्डा बुलन्द किया है। इसे हम हर्गिज बरदाश्त नही कर सकते। अगर तुमने फौरन उसे ये बेहूदा हरकत करने से न रोका तो हमे मजबूर न तुम्हे नौकरी से बरखास्त कर देना होगा।"

नवाब ने एक पत्र स्वय लिखा और एक शाहजी से लिखवाया। उन दोनो पत्रो को लेकर नवाब का दूत शिवाजी के पास पहुँचा। उन पत्रो मे शिवाजो को दरबार मे आने के लिए लिखा गया था। इन पत्रो को प्राप्त कर शिवाजी असमजस मे पड गए कि उनका क्या उत्तर दे। शिवाजी उन पत्रो को लेकर

अपने गुरु कोडदेव से मिले और परामर्श किया । कोडदेव ने शिवाजी को समयोचित परामर्श दिया । यह परामर्श प्राप्त कर शिवाजी ने उन पत्रो का उत्तर लिखा । अपने नवाब को लिखा, "यदि आप मेरी जीती हुई जमीन और किले मुझे देने को उद्यत हो तो मुझे आपसे भेट करने के लिए दरबार मे हाजिर होने मे कोई आपत्ति नही है ।" दूसरा पत्र अपने पिता शाहजी को लिखा, "आदरणीय पिता जी ! कृपा-पत्र मिला । मै अब इतना नादान बच्चा नही हूँ कि अपना भला-बुरा न समझ सकू । अपनी अच्छाई और बुराई का मुझे ज्ञान है और उसे समझने की मुझ मे शक्ति है ।"

शिवाजी के पत्र को पढकर नवाब जल-भुन कर राख हो गया परन्तु करता क्या । शिवाजी पर तो उसकी पार बसा नही सकती थी । उनसे अपने दिल की जलन शाहजी को कैद करवा कर निकाली । शाह जी बोले, "नवाब साहब ! क्या मेरी इतनी लम्बी नौकरी और वफादारी का यही इनाम है । लड़का विद्रोही हो गया, इससे मेरा क्या सम्बन्ध ? मै उसे रोक सकता तो क्या रोक न लेता ?" परन्तु नवाब पर उनके कहने का कोई प्रभाव न हुआ । उन्होने शाहजी की कोई बात न सुनी और उन्हे एक अंधेरी कोठरी मे बन्द करा दिया ।

यह कोठरी बिलकुल अंधकारपूर्ण थी । उसमे प्रकाश जाने के लिए केवल एक छोटा-सा सूराख मात्र था । नवाब ने

शाहजी से कहा, "यदि तुम अब भी अपने बेटे शिवाजी को विद्रोह के रास्ते से हटा सको तो तुम्हे मुक्त किया जा सकता है। यदि तुमने उसे न रोका तो यह छोटा सा सूराख जिससे कोठरी मे प्रकाश जाता है, उसे भी बन्द कर दिया जाएगा।'

शाहजी ने इस कोठरी के अन्दर से शिवाजी के नाम एक पत्र और लिखा। उस पत्र को लेकर नवाब का दूत पुन शिवाजी के पास गया।

इस पत्र को पढकर शिवाजी एक क्षरण के लिए तो स्तब्ध रह गए। उनके काररण उनके पिता पर सकट आ गया था, यह बात उन्हे हार्दिक पीडा पहुँचा रही थी। इस समय एक ओर उनके समक्ष अपना कर्त्तव्य खडा था और दूसरी ओर पूज्य पिताजी की मृत्यु।

शिवाजी जहाँवीर और साहसी व्यक्ति थे वहाँ उन्होने राज-नीति मे कुशल मस्तिष्क भी प्राप्त किया था। उन्होने दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ को एक पत्र लिखा, जिसमे उनसे प्रार्थना की "मेरे पिता शाहजी को बीजापुर नवाब ने कैद कर लिया है। आप उन्हे मुक्त कराने की कृपा करें। पिताजी के मुक्ति प्राप्त करने पर मैं आपकी सेवा मे आने को उद्यत दूँ।"

शाहजहाँ दक्षिरण की रियासतो के मामलो मे हस्ताक्षेप करने का अवसर खोज रहा था। शिवाजी का पत्र प्राप्त करते ही शाहजहाँ ने बीजापुर नवाब के पास शाहजी को तरन्त

मुक्त करने का आदेश भेज दिया। साथ ही शाहजहाँ ने शिवाजी को अपना पच हजारी सरदार घोषित किया।

शिवाजी ने यह एक जबरदस्त राजनैतिक दाव खेला। वह मुगलो के भी दास नही बनना चाहते थे। उनकी इच्छा अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की थी। यह कार्य तो आपने इस कठिन समय को टालने और अपने पिता को मुक्त करने के अभिप्राय से किया था।

शिवाजी की इस राजनैतिक चाल ने शाहजी को मुक्त करा दिया। शिवाजी स्वय बीजापुर दरबार मे नवाब के पास पच हजारी पद प्राप्त करने के लिए गए परन्तु शिवाजी ने संधि की शर्तें इतनी कड़ी रखी कि सधि होना ही असम्भव हो गया।

शिवाजी के इस चमत्कारपूर्ण कार्य ने बीजापुर नवाब और दिल्ली के बादशाह दोनो को चकित कर दिया।

शाहजी मुक्त हो गए और सधि सम्पन्न न हो सकी। शिवाजी का अभिप्राय सधि करना नही था। वह तो केवल अपने पिता को मुक्त कराना चाहते थे।

शाहजी ने जेल से शिवाजी को विद्रोह परित्याग करने के लिए लिखा अवश्य था परन्तु वह हृदय से शिवाजी की सफलता चाहते थे।

शिवाजी अब बीजापुर के नवाब से चौकन्ने रहने लगे। उन्होने अपने पिता और माता को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा कर अपने सैनिक सगठन के कार्य को बढावा देना आरम्भ कर दिया।

शिवाजी के पास अब जितने भी गढ थे उनमे सैनिक तय्यारियाँ होने लगी।

———

अफजलखां की मृत्यु

शिवाजी ने जिस राजनैतिक चाल से अपने पिता शाहजी को मुक्त कराया उसने बीजापुर के नवाब मुहम्मद आदिल को शाह को उनका घातक शत्रु बना दिया। नवाब ने शिवाजी समाप्त करने का दृढ निश्चय कर लिया। शिवाजी के सामने पड़कर युद्ध करने का उसमे साहस नही था। इसलिए उसने छल से शिवाजी को मारने का निश्चय किया।

नवाब ने बाजी शामराज नामक व्यक्ति को शिवाजी की हत्या करने के लिए उनके पास भेजा। जावली का सरदार चन्द्रराव शामराज की सहायता के लिए गया। परन्तु शिवाजी पर इस प्रकार हाथ डालना सरल कार्य नही था। शिवाजी के गुप्तचर चारो ओर फैले हुए थे। उन्होने पहले ही उस षड़यत्र का पता लगाकर शिवाजी को उसकी सूचना दे दी।

शिवाजी ने अपनी सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर लिया। जिस

समय शामराज ने आक्रमण किया तो उसे उसका मुँह तोड उत्तर मिला। शामराज घबरा कर जावली की दिशा मे भाग गया।

शिवाजी ने जावली के नवाब को पत्र लिखा, "मुझे ज्ञात हुआ है कि शामराज जावली मे छिपा हुआ है। पत्र पाते ही तुरन्त मुझ से मिलने आओ अन्यथा आक्रमण के लिए तय्यार हो जाओ।"

जावली के नवाब ने अपनी इस चाल मे असफल होकर शिवाजी को बन्दी बनाने का प्रयास किया। शिवाजी उस स्थान पर अपने दो दूतो को छोडकर स्वय वहाँ से चले गए। दूतो ने सधि करने का प्रयास किया परन्तु कोई परिणाम न निकला। अन्त मे युद्ध ने ही इस बात का निपटारा किया। चन्द्रराव युद्ध मे मारा गया।

शिवाजी ने चन्द्रराव के मरते ही जावली पर अधिकार कर लिया। यह समाचार जब बीजापुर के नवाब को मिला तो उसके होश उड़ गए।

इसी बीच मुगल राज्य मे क्रांति हुई। औरगजेब ने अपने सब भाइयो को मरवा डाला और स्वय गद्दी पर बैठ गया। ऐसी दशा मे क्योकि वह केन्द्र मे शान्ति रखना चाहता था इसलिए बाहर के किसी भी राजा या नवाब से शत्रुता नही बढाना चाहता था।

शिवाजी ने औरगजेब की स्थिति का अध्ययन कर उससे सधि की बातचीत चलाई। शिवाजी औरगजेब के मन की गहराई को मापना चाहते थे। घुटन दोनो ओर समान थी। दोनो ही छल से बातें कर रहे थे। औरगजेब सोच रहा था कि यदि किसी तरह शिवाजी उसके हाथो मे आ जाए तो वह उसे मृत्यु के घाट उतार दे। शिवाजी औरगजेब की नस-नस को पहचानते थे। वह समझ गए कि औरंगजेब उनके साथ चाल खेलना चाहता है। इसके पश्चात् की सधि-बातचीत चलती रही परन्तु दिलो मे दोनों के एक-दूसरे के प्रति अविश्वास था।

शिवाजी ने रघुनाथ पन्त और कृष्ण जी भास्कर को औरंगजेब के पास सधि की बातचीत करने के लिए भेजा। औरगजेब ने समय की गम्भीरता को देखते हुए उस समय शिवाजी को कोकण प्रात का स्वामी मान लिया और उसने उसके अधिकार मे रहने पर कोई आपत्ति नही की।

यह सधि औरगजेब ने उस समय शिवाजी से कर तो अवश्य ली परन्तु वास्तविकता यह थी कि वह शिवाजी को अपना बडा शत्रु समझता था। वह शिवाजी से घृणा करता था और साधारण पत्र-व्यवहार मे शिवाजी को 'कुत्ते का बच्चा' लिखा करता था। मुगल सेनापति शिवाजी को 'लुटेरा' और 'पहाडी चूहा' के नाम से सम्बोधित करते थे।

वह एस कारण उपस्थित करने मे कभी नही चूकते थे जिससे औरगजेव के मन की कुढन बढे ।

एक बार औरगजेब ने अपने दक्षिण के सेनापति को लिखा था, "शिवाजी के राज्य मे घुसकर उसके गाँवो को उजाड दो। जो कोई सामने आए उसे बेहरमी के साथ कत्ल कर डालो। किसी पर रहम करने की जरूरत नही है। शिवाजी के राज्य मे बदमनी फैला दो, उसे नष्ट कर दो।" यह पत्र है औरगजेब के मस्तिष्क का चित्र।

ऊपर से सधि की बातचीत करने वाला और गजेब अन्दर से इतनी कालिमा रखता था। उसके दिल मे हर समय शिवाजी के प्रति द्वेष की ज्वाला जलती रहती थी। इसीलिए सधिवार्ता बीच में ही रह गई। यह सधि अपूर्ण थी ।

औरगजेब शिवाजी से चौकन्ना था और शिवाजी औरगजेब से औरगजेब अपने सेनापतियो को बराबर शिवाजी को क्षीण करने को लिख रहा था।

इधर औरगजेब की यह मन स्थिति थी और दूसरी ओर बीजापुर का नवाब शिवाजी को समाप्त करने पर तुला हुआ था परन्तु वाह रे शेर शिवाजी ! उसे किसी की तनिक भी चिंता नही थी। वह दोनो को तुर्की बतुर्की जवाब दे रहा था, दोनो के दाव-घातो को समझ रहा था और उनके प्रत्येक छल से अपनी सुरक्षा के प्रति सतर्क था।

बीजापुर के नवाब ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति अब शिवाजी

को समाप्त करने पर जुटा दी थी। उसके समक्ष अब एक ही लक्ष्य था कि वह किसी तरह शिवाजी को समाप्त करदे। उस ने एक दिन अपने सरदारो को बुलाकर उनसे पूछा, 'क्या तुम लोगो मे कोई ऐसा है जो शिवाजी का सिर भी नीचा कर सके। जो सरदार शिवाजी का मान-मर्दन करेगा उसे पुरस्कार दिया जाएगा।"

यह सुनकर अफजल खाँ सीना उभार कर बोला, "शिवाजी जैसे पहाडी चूहे को मै अपने जूते के नीचे कुचल सकता हू नवाब साहब! हुक्म हो तो उसे जिन्दा या मुर्दा नवाब साहब के हुजूर मे पेश करूँ।"

नवाब ने हुक्म दिया, "अफजल खाँ! तुम फौरन फौज लेकर जाओ और उसे हमारे हुजूर में पेश करो। उसे कैद कर के लाओ और काल कोठरी मे बन्द करके सडाकर मार डालो। बारह हजार चुने हुए जवान अपने साथ ले जाओ।"

अफजल खाँ ने तुरन्त सेना को अपने साथ चलने की आज्ञा दी और शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया।

अफजल खा ने शिवाजी के राज्य की दक्षिणी सीमा पर आक्रमण किया। वहाँ तुलजापुर नाम का एक किला था। उसे अफजल खाॅ ने अपने अधिकार मे ले लिया। उस किले मे भवानी का मन्दिर था। अफजल खाॅ ने एक गऊ का वध करा कर भवानी के मन्दिर मे गऊ का रक्त छिडका। ऐसा करके उसने अपनी धर्मांधता का परिचय दिया।

तुलजापुर किले पर अधिकार करके अफजल खाँ पण्ढरपुर की ओर बढ गया। वहाँ के मन्दिर को भी उसने भ्रष्ट किया और उसकी मूर्तियाँ उठवाकर नदी मे फिकवा दी। फिर वहाँ से आगे बढकर बाई नामक स्थान पर पहुँचा। वहां पहुँचकर उसने शिवाजी को बन्दी बनाने के लिए एक लोहे का सन्दूक तय्यार कराया। उसे पूर्ण विश्वास था कि वह शिवाजी को उसमे बन्द करके बीजापुर ले जाएगा।

शिवाजी को जब पता चला कि अफजल खाँ इतनी बडी सेना लेकर आ रहा है तो वह कुछ चिंतित हुए। वह भवानी के मन्दिर मे पूजा करने गए। कहते है भवानी के मन्दिर में आकाशवाणी हुई, "पुत्र शिवा ! चिंता का कोई कारण नही युद्ध मे तुम्हारी विजय होगी।"

इस भविष्यवाणी को सुनकर शिवाजी का उत्साह बढ गया। उन्होने उसी क्षण युद्ध की घोषणा कर दी और अपने वीरो को आक्रमण के लिए तय्यार होने का आदेश दिया।

फिर क्या था। मराठे वीर अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित होकर मैदान मे उतर पडे।

अफजल खॉ सामने पडकर शिवाजी से मोर्चा नही लेना चाहता था। वह शिवाजी पर धोखे से वार करने की घात लगा रहा था। उसने शिवाजी के पास सदेश भेजा कि वह उनसे एकांत मे मिलना चाहता है। उसका दूत कृष्ण जी

भास्कर शिवाजी के पास सधि-प्रस्ताव लेकर आया। उसने कहा, "खाँ साहब आपसे युद्ध नही करना चाहते। वह चाहते हैं कि आप दोनो एकॉत मे मिलकर आपस मे सुलह की बात-चीत कर ले। खाँ साहब ने कहा है कि आपके पिता शाहजी उनके घनिष्ठ मित्र थे। वे दोनो पर्याप्त काल तक साथ-साथ रहे हैं।"

यह सुनकर शिवाजी मुस्कराकर बोले, "तब तो खाँ साहब हमारे पिता तुल्य ही हुए। उनसे हमारा विरोध हो क्या है ? हमे उनसे सधि करने मे आपत्ति ही क्या हो सकती है।"

दूत बोला, "खाँ साहब ने कहा है कि वह आप से मित्र भाव से मिलना चाहते हैं। इस भेट के पश्चात वह नवाब आदिल-शाह से कहकर कोकण प्रदेश और आपका जीता हुआ राज्य आपके ही सुपुर्द करा देगे।"

शिवाजी बोले, "मित्र भाव से नही भास्कर! उन्हे तो हमसे पिता-भाव से मिलना चाहिए। जब वह पिताजी के मित्र रहे है तो हम भी उनका पिता के ही समान-आदर करेंगे।"

शिवाजी ने कृष्ण जी भास्कर को विशेष आदर-सम्मान के साथ अतिथि-गृह में ठहराया।

कृष्णजी भास्कर ने समझा कि शिवाजी अफजलखाँ की चाल में फँस गए। वह अफजलखाँ का दूत अवश्य था परन्तु शिवाजी का आदर करता था। वह एकांत मे शिवाजी से बोला, "छत्रपति! अभी तक मैंने जो कुछ कहा वह अफजलखाँ का

संदेश था परन्तु वास्तविकता यह है कि वह धूर्त आपको चक्कर में डालकर बन्दी बनाना चाहता है। वह बीजापुर से प्रतिज्ञा करके चला है कि आपको जिन्दा या मुर्दा लेकर ही बीजापुर मे प्रवेश करेगा।"

शिवाजी मुस्कराकर बोले, "कृष्ण जी भास्कर! मैं तुम्हारी स्पष्टवादिता से बहुत प्रसन्न हुआ। अफजलखाँ अपने आपको बहुत चालाक समझता है। वह जिस धोखे से मुझे बन्दी बनाना चाहता है उसमें वह स्वय फंसकर रह जायेगा। तुम चिन्ता न करो। उससे जाकर कहना कि मै उनकी इस कृपा के लिए उनका आजीवन आभारी रहूँगा। मैं उनसें भेट करनें के लिए उत्सुक हूँ। उनसे बडा हितैषी मुझे कहाँ मिलेगा। आखिर तो वह पिता जी के मित्र है और मुझ पर पुत्रवत स्नेह रखते हैं।"

कृष्णाजी भास्कर के साथ शिवाजी नें अपनें दूत पन्तजी गोपीनाथ को भेजा। उसने शिवाजी का सदेश जाकर उन्हे दिया और विश्वास दिलाकर कहा कि शिवाजी उनका आदर करते हैं। वह उन्हे पिता तुल्य समझकर ही उनसे सधि-वार्त्ता करेंगे। वह उनके सामने अपनी सब गलतियो की माँफी माँगने को उद्यत हैं।

अफ़जलखाँ बोला, "भेट के लिए कौन-सा स्थान उपयुक्त रहेगा। क्या वह हमारी छावनी मे चले आयेंगे?"

पन्तजी गोपीनाथ बोले, "खाँ साहब! यह व्यक्तिगत भेंट नहीं है। इसलिए उत्तम यही होगा कि भेट का स्थान दोनो

छावनियो के बीच मे किसी स्थान पर रखा जाए। इसमे दोनो को कोई आपत्ति न होगी।"

अफजलखाॅ ने पन्तजी गोपीनाथ की बात मानकर भेंट का स्थान दोनो छावनियो के बीच मे निश्चित कर लिया। भेट का स्थान बाई और प्रतापगढ के बीच पाट नामक स्थान पर भेट होना निश्चित हुआ।

यहाँ एक लम्बा-चौडा मैदान था। उसके आस-पास कोई वृक्ष नही था। आस-पास के झाड़-झंकाड़ो को कटवा दिया गया। दोनों में यह निश्चिय हुआ कि दोनो खाली हाथ एक दूसरे से भेट करेंगे। कोई भी हथियार लेकर पाट मे नही आयेगा।

अफजलखाँ के पास से विदा होकर पंतजी गोपीनाथ ने प्रतापगढ के लिए प्रस्थान किया। अफजलखाँ की बाछे खिली हुई थी। वह समझ रहा था कि उसने अपनी चालाकी से शिवाजी को अपने चगुल मे फँसा लिया।

दूसरे दिन अफजलखाँ पालकी मे बैठकर एक हजार सैनिको के साथ पाट के मैदान की ओर रवाना हुआ। निश्चित यह हुआ कि दोनो सरदार खाली हाथ एक दूसरे से भेट करेगे और उनके साथ उनका कोई सैनिक नही होगा। अफजलखाॅ ने इस शर्त का सरासर उल्लंघन किया और एक हजार सैनिक अपने साथ ले लिएं।

अफजलखाॅ समझ रहा था कि शिवाजी उसकी बातों मे फँसकर अकेला खाली हाथ पाट के मैदान में उससे भेट करने

के लिए आयेंगे। परन्तु शिवाजी इतने मूर्ख नही थे। वह अफजलखाँ की चालबाजियो को पूर्ण रूप से समझते थे। इस लिए उन्होने अपने दो हजार जवान रात्रि को ही पाट के मैदान के चारो ओर वन मे छिपा दिए थे और स्वय ऊपर कोई हथि-यार धारण न करके केवल हाथो मे बगनक पहन लिए थे, जो मुट्ठियाँ भीच कर अगुलियो मे पहनी अगूठियो के अतिरिक्त और कुछ नही जान पडते थे।

जब अफजलखाँ की पालकी पाट मे निर्दिष्ठ स्थान पर पहुँच गई तो कृष्ण जी भास्कर बोले, 'खा साहब! यदि आप शिवाजी को धोखे मे रखना चाहते हैं तो इस फौज को साथ ले जाना उचित नही है। इसे देखकर वह कभी भी आपके सामने न आयेगे।"

अफजलखाँ ने कृष्णजी भास्कर की यह सलाह मानकर सेना को पीछे छोड दिया और पालकी के कहारो से पालकी मैदान मे ले चलने को कहा। केवल दो सैनिको को उसने अपने साथ रखा।

कहारो ने पालकी उठा ली और मैदान के बीचो-बीच उसे ले जाकर रख दिया। अफजलखाँ ने पालकी से निकलकर देखा तो शिवाजी अभी तक नही आये थे। वह शिवाजी की प्रतीक्षा करने लगा।

शिवाजी ने अपने सारे बदन को सुरक्षित रखने के लिये लोहे का कवच पहना हुआ था। सिर पर लोहे का तवा बाँधा हुआ था और उस पर पगडी। कवच के ऊपर अगरखा पहन

रखा था। उन्होने जब दूर से देख लिया कि अफजलखाँ मैदान मे अकेला खडा है तो वह घोडे पर चढकर मैदान मे पहुँच गए। उनके साथ जीवाजी महला और शम्भू जी कावजी थे।

शिवाजी के मन मे कोई भय नही था। परन्तु फिर भी वह नाटकीयभय प्रदर्शित करते हुए मैदान मे पहुँचे। अफजलखाँ लम्बा-चौडा डीलडौल का आदमी था। शिवाजी उसके समक्ष कुछ भी नही थे। वह शिवाजी को देखकर मुस्कराया। शिवाजी ने आगे बढकर उसे झुककर प्रणाम किया। उसने अपने दोनों हाथ फैलाकर शिवाजी को अपनी कौली में भर लिया।

शिवाजी अफजलखाँ की चालबाजी से अपरिचित नही थे। अफजलखॉ ने एक हाथ से शिवाजी की गर्दन दबाई और दूसरे से कृपाण निकालकर उन पर वार किया परन्तु शिवाजी लोहे का कवच पहने हुए थे। कृपाण उससे टकराकर टूट गई। अफजलखाँ देखता का देखता ही रह गया।

शिवाजी ने एक झटके से अपनी गर्दन छुडाकर अपने दोनों हाथ खोले और बगनख के कांटे अफजलखाँ की कोखों मे घुसा कर उसकी अतडियाँ पेट से निकालकर बाहर कर दीं।

अफजलखाँ के शरीर-रक्षक सय्यद बांदा शिवाजी पर तलवार लेकर झपटा तो जीवाजी महला ने अपनी तलवार से उसका तलवार वाला हाथ काटकर गिरा दिया। फिर दूसरे वार से उसका काम तमाम कर दिया।

अफजलखाँ जमीन पर गिर पडा। पालकी के कहारों ने अफजलखाँ के शव को ले जाने का प्रयास किया तो उन्हे भी यमपुरी पहुँचा दिया गया। शम्भूजी ने अफजल खा का सिर धड़ से पृथक् करके शिवाजी के चरणो पर डाल दिया।

अफजलखाँ के सैनिको ने दूर से यह दृश्य देखा तो वे मैदान की ओर दौड पडे। यह देखकर शम्भूजी ने शंख बजा दिया। मराठे वीर इधर से निकलकर मैदान में आ गए। यवनो और मराठो मे घमासान युद्ध हुआ। अफजलखाँ के साथ आने वाले एक हजार सैनिको मे से एक भी सैनिक बचकर वापस न जा सका।

इसके पश्चात् शिवाजी ने प्रतापगढ से अपनी सेना को बुलाकर बाई मे पडी यवन सेना पर आक्रमण कर दिया। शिवाजी ने यवनो को मारकर अपने राज्य से बाहर निकाल दिया और जो स्थान उनके हाथो मे चले गये थे उन्हे फिर से अपने अधिकार मे कर लिया। जिन मन्दिरो को अफजलखा ने अपवित्र कर दिया था उनमे गंगाजल छिडक कर उन्हे पवित्र किया और जिनकी मूर्तियाँ फिकवा दी थी उनमे नई मूर्तियाँ स्थापित कराई।

इस युद्ध मे अफजलखाँ के दो लडकों को भी बन्दी बनाया गया। ५६ हाथी, ४००० घोडे, १२०० ऊँट और दस लाख मोहरें

शिवाजी को मिली। इनके अतिरिक्त बहुत से अस्त्र-शस्त्र भी उनके हाथ लगे।

शिवाजी की इस विजय ने बीजापुर नवाब के छक्के छुडा दिए। उसका साहस जाता रहा। भविष्य मे उसने फिर कभी इतना बडा साहस शिवाजी से टक्कर लेने का नही किया।

४

शाइस्ताखाँ का पतन

अफजलखाँ की मृत्यु का समाचार जब औरंगजेब को मिला तो वह भी चकित रह गया। औरगजेब के क्रोध का पारावार न रहा। बीजापुर के नवाब की बहुत बुरी दशा हुई। उसमे साहस ही न रहा कि वह शिवाजी के विषय मे कुछ सोच भी सके। उसे तभी कुछ शान्ति प्राप्त हुई जब उसने शिवाजी से सधि करली। बीजापुर नवाब को शिवाजी का विजित प्रदेश छोड देना पडा।

शिवाजी ने अब अपनी दृष्टि बीजापुर से बाहर के प्रदेशो पर फैलाई। अब बीजापुर का क्षेत्र उनके लिए सीमित हो गया। उन्होने सोचा कि दक्षिण मे हिन्दू राज्य की स्थापना की जाय और वहाँ की मुसलमानी रियासतो को समाप्त किया जाय।

औरंगजेब कट्टर मुसलमान था। वह भारत मे मुसलमानी राज्य स्थापित करने का दृढ सकल्पकर चुका था। इसलिए किसी

भी हिन्दू राज्य को वह सहन नही कर सकता था। शिवाजी अब उसकी दृष्टि मे उसका सबसे बडा शत्रु था। शिवाजी की सफलताओ को देखकर उसके हृदय मे द्वेष की चिंगारी दहक उठी। अब वह नित्य प्रति शिवाजी को नीचा दिखाने की घात में लग गया।

दक्षिण का सूबेदार शाइस्ताखाँ था। यह औरंगजेब का मामा था। शाइस्ताखाँ मुगल सेना का ख्याति प्राप्त सेनानी था। उसने कई युद्धो मे विजय प्राप्त की थी। औरंगजेब ने शाइस्ताखाँ को आज्ञा दी कि दक्षिण पर तुरन्त आक्रमण करके शिवाजी के राज्य को समाप्त कर दिया जाय और उसके प्रदेश को मुगल राज्य मे मिला दिया जाय।

शाइस्ताखाँ को सहायता के लिए औरंगजेब ने जसवतसिंह को भेजा। जसवंतसिंह और शाइस्ताखाँ की सेनाओ ने दक्षिण दिशा मे कूच किया। यह सेना शिवाजी का सर्वनाश करने के लिए भेजी गई थी। बहुत विशाल सेना थी। शिवाजी के पास इससे चौथाई भी सैनिक शक्ति नही थी।

शिवाजी ने देखा कि मुगल सेना तूफान की तरह दक्षिण दिशा मे उठी चली आ रही थी। उस तूफान का सामना करना सरल कार्य नही था। शिवाजी ने कई स्थानो पर उससे मोर्चा लिया परन्तु अन्त में मैदान छोडना पड़ा। मुगल सेना ने एक के पश्चात् दूसरे किले पर अधिकार करना आरम्भ किया। पूना तक के प्राय सब किले शाइस्ताखाँ के अधिकार में चले गए।

लगभग दो वर्ष तक शाइस्ताखाँ दक्षिण मे अपना आतक जमाए रहा। इन दो वर्षो मे शिवाजी ने शाइस्ताखाँ की सेना पर कई बार छापे मारे, उसे हानि भी पहुँचाई परन्तु इससे शाइस्ताखाँ की इतनी विशाल सेना का कुछ बिगडने वाला नही था।

पूना पर शाइस्ताखाँ का अधिकार था पूना के किले मे मुगल सेनापति आराम के दिन व्यतीत कर रहा था। मौज ले रहा था मुगल सल्तनत की। मदिरा का दौर चल रहा था नाच-गाने हो रहे थे। भोग-विलास का जीवन मौज मे बह रहा था। उसे किसी की भी चिंता नही थी। शिवाजी की शक्ति उसकी दृष्टि मे नगण्य थी। वह शिवाजी के कई आक्रमणो को विफल कर चुका था। इसलिए वह उनकी चिंता भी क्या करता।

एक दिन रात्रि को शिवाजी ने अवसर देखकर बारात बना कर अपनी सेना के साथ सूरत मे प्रवेश किया। शाइस्ताखाँ अपने किले मे मौज ले रहा था। ध्यान भी नही था कि ऐसे समय मे उस पर कोई विपत्ति आ सकती है। रमजान का दिन था। रात्रि के बारह बजे जब शहर मे सन्नाटा था तो शिवाजी एक हजार सेनिको को लेकर किले मे घुस एए।

शाइस्ताखाँ अपने हरम मे मस्त पड़ा था। शिवाजी और चिमनाजी बापू कुछ सेनिको को लेकर सीधे शाइस्ताखाँ के हरम मे पहुँच गए। जब बाहर कुछ शोर हुआ तो बाँदियो ने शाइस्ता खाँ को जगाया। अभी वह पूरी तरह सचेत भी न हो पाया था कि शिवाजी उस पर टूट पड़े। तभी किसी ने वत्ती बुझादी।

अ धेरे मे शाइस्ताखाँ वहाँ से भाग निकला परन्तु भागते-भागते पर शिवाजी ने तलवार का वार किया तो शाइस्ताखाँ का एक अगूठा और दो उ गलियाँ कट गई ।

किले मे शाइस्ताखाँ ने देखा कि कत्लेआम मचा हुआ था। शाइस्ताखाँ का लडका अबुलफतह मराठों की तलवार से काट कर गिरा दिया गया। शाइस्ताखाँ की समझ मे न आया कि उस दशा मे वह क्या करे। वह किले से निकल कर भाग निकला।

यह घटना ५ अप्रैल १६२६, की है। उस समय औरंगजेब काश्मीर जाने का तैयारी मे लगा था। उसे जब शाइस्ताखाँ की इस पराजय का समाचार मिला तो वह आग-बबूला हो उठा। उसने शाइस्ताखाँ पर क्रोधित होकर उसे दक्षिण से बगाल जाने की आज्ञा दी।

अफजलखाँ की मृत्यु और शाइस्ताखाँ की इस दुर्गति ने मुगल सेना का प्रभाव दक्षिण मे कम कर दिया। दक्षिण की ओर बढने का अब मुगल सेनापतियो मे साहस न रहा। शिवाजी की दक्षिण मे धाक जम गई। अब उनके सामने सिर उठाने का किसी मे साहस नही था।

दक्षिण की मुसलमान रियासतो की तो अब दशा बिलकुल खराब हो गई थी। उनके नवाब शिवाजी का नाम सुनकर भी काँप उठते थे।

औरगजेब शाइस्ताखाँ के अपमान के पश्चात् चुप बैठने वाला नही था। शिवाजी ने मुगल साम्राज्य का भयकर अपमान किया था। उसका बदला लिए बिना औरंगजेब को चैन नही

पकड सकती थी। उसने अब अपनी पूरी शक्ति शिवाजी की शक्ति को समाप्त करने की दिशा मे लगा दी।

इस बार औरंगजेब ने जयसिह को दक्षिण का सेनानी बनाकर भेजा। उसके साथ राजपूतो की जबरदस्त सेना थी। जयसिह ने अपनी छावनी पूना मे जाकर डाली। शिवाजी ने अब मैदानो मे रहना अपने लिए सुरक्षित न समझा। वह मैदानो से हटकर पहाडी इलाके मे चले गए।

शिवाजी ने पुरन्दर के किले को अपना केन्द्र बनाया। मुगल सेनाएँ पहाडो पर बिछानी आरम्भ हो गई। दिलेरखा ने आगे बढकर बज्रगढ के किले पर अधिकार करलिया। बज्रगढ पर मुसलमानो का अधिकार हो जाने पर पुरन्दर असुरक्षित हो गया। बजगढ से पुरन्दर की सुरक्षा थी। बजगढ के हाथो से निकल जाने पर भी मराठो ने साहस न छोडा। सेनापति मुरार बाजी प्रभु पुरन्दर की रक्षा कर रहे थे। एक दिन अवसर देखकर वह ७०० वीर मराठो को लेकर दिलेर खाँ के ५००० मुगल सेनिको पर टूट पडे। इन सात सौ मराठो ने ५००० मुगल सेनिको को चीरकर फेक दिया परन्तु इस युद्ध मे बाजीराव प्रभु का देहान्त हो गया। इससे मराठो को बहुत ठेस पहुँची।

शिवाजी ने जब देखा कि मुगलो की इतनी विशाल सेना का मुकाबिला करना मराठो के लिए कठिन था तो उन्होने जयसिंह के पास सधि प्रस्ताव भेज दिया।

महाराज जयसिंह ने शिवाजी का सधि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। सधि की शर्तें औरगजेब के पास लिखकर भेज दी गई

और जब तक औरंगजेब के पास से उत्तर न आया तब तक के लिए युद्ध स्थगित कर दिया गया।

औरगजेब ने शिवाजी की शर्तें मानली और सधि हो गई। सधि हो जाने के पश्चात् शिवाजी ने मुगल सेनाओ की बीजापुर रियासत पर विजय प्राप्त करने मे सहायता की। औरगजेब ने शिवाजी के इस सहयोग पर प्रसन्न होकर उनके लिए उपहार स्वरूप शाल-दुशाले भेजे। औरगजेब ने शिवाजी को पत्र लिखा कि वह शाही दरबार मे पधारे। शाही दरबार मे उनका शाही सम्मान किया जाएगा।

महाराज जयसिह ने शिवाजी की सुरक्षा का वचन दिया। महाराज जयसिह के आश्वासन पर शिवाजी ने शाही दरबार मे आना स्वीकार कर लिया।

शिवाजी के जीवन मे हमे राजनीतिक भूले बहुत कम देखने को मिलती है परन्तु यहाँ वह भी औरगजेब की चाल मे फँस गए। उन्हे किसी भी दशा मे शाही दरबार का निमत्रण स्वीकार नही करना चाहिए था। औरगजेब का विश्वास करना एक भयकर भूल थी।

५

औरंगजेब का विश्वासघात

शिवाजी महाराज जयसिह के आश्वासन पर शाही दरबार मे जाने को उद्यत हो गए थे। वह पूना से आगरा पहुँचे तो मुगल अफसर मुखलिफ खाँ और जयसिंह के पुत्र रामसिंह ने उनका स्वागत किया। शिवाजी इस सम्मान के घूँट को विष का प्याला समझकर पी गए। वह शाही दरबार मे पहुँचे तो उन्होने देखा कि औरगजेब अपनी शानो-शौकत के साथ राज-सिंहासन पर बैठा था। वह शिवाजी के दिल पर मुगल साम्राज्य की शानो-शौकत की धाक जमाना चाहता था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने शिवाजी को मुगल दरबार मे बुलाया था।

दरबार की प्रथा के अनुसार शिवाजी ने औरगजेब को तीस हजार मोहरे भेट की। औरगजेब ने शिवाजी की भेट स्वीकार करके उन्हें पाँच हजारी मसबदारो मे बैठने का सकेत किया।

शिवाजी का अपमान करने के लिए यह सब औरगजेब ने किया था। शिवाजी के पाँच हजारी कई अपने सरदार थे।

उन्हे पाँच हजारी नायको की श्रेणी मे स्थान देना उनके अपमान के अतिरिक्त और कुछ नही था।

शिवाजी तिलमिला उठे। इस अपमान को सहन करना उनके लिए कठिन हो गया। उन्होने दरबार मे ही जयसिह की ओर देखकर कहा, "महाराज जयसिह! क्या यही वह शाही सम्मान था जिसके लिए आप मुझे दक्षिण से यहाँ बुलाकर लाए थे?"

यह सुनकर औरंगजेब खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसके सैनिको ने शिवाजी को हिरासत मे ले लिया। औरगजेब बोला, "शिवाजी! तू बड़ा चालाक बनता है। क्या तू समझता था कि शहशाह औरंगजेब तेरे स्वागत के लिए खड़े होकर दरबार के फाटक पर आते?"

शेर अब पिजडे में बन्द था। पिजडे मे बन्द शेर के सामने कोई भी जबान चला सकता था। शिवाजी ने औरगजेब की बात का कोई उत्तर न दिया। वह एक राजनीतिक भूल जयसिह के धोखे मे आकर कर चुके थे। अब दूसरी भूल वह औरंगजेब की बात का उत्तर देकर नही कर सकते थे।

शिवाजी को बन्दी बना लिया गया। उन्हे दरबार से सैनिक हिरासत में बन्दीगृह भेज दिया गया। शिवाजी चुपचाप दरबार से चले गए। दरबार मे सन्नाटा हो गया। एक भी शब्द किसी का सुनाई नही दे रहा था।

शिवाजी को जेल में बन्द कर दिया गया। औरगजेब अपनी

चाल मे सफल हुआ। वह अपने मन मे बहुत प्रसन्न था कि उसकी राजनीतिक चाल के जाल मे शिवाजी फंस गया। अब उसे दक्षिण मे अन्य किसी की चिन्ता नही थी।

शिवाजी को अपनी भूल पर बहुत पश्चाताप हुआ। वह अब दिन-रात यही सोचते रहते थे कि किस तरह उस जेल से बाहर निकले। परन्तु ऊपर से उन्होने अपने पास आने वालो से यही कहा कि अब उनका जीवन जेल मे ही समाप्त होगा। अब वह जेल से बाहर नही जायेगे। जेल से बाहर जाने की अब उनकी कोई इच्छा नही है।

शिवाजी की इस निराशा को देखकर औरगजेब अपने मन मे बहुत प्रसन्न हुआ। उसने भी अब अपने मन मे समझ लिया कि अब शिवाजी जेल से कही जाने वाला नही है। औरगजेब की लापरवाही के साथ-साथ उसके पहरेदार भी लापरवाह होते गए। शिवाजी ने उनसे मित्र-भाव प्रदर्शित करना आरम्भ कर दिया।

एक दिन शिवाजी ने बीमार होने का बहाना किया। औरगजेब को जब उनकी बीमारी का समाचार मिला तो उसने हकीम और वैद्यो को जेल मे जाकर शिवाजी की चिकित्सा करने की आज्ञा दे दी।

शिवाजी की परीक्षा के लिए दूर-दूर के वैद्य और हकीम आने लगे। शिवाजी के सरदार भी वैद्यो का वेश बनाकर उनसे जेल मे जाकर मिलने लगे। उपचार चलता रहा।

धीरे-धीरे फिर शिवाजी के स्वस्थ होने का समाचार फैलने लगा। यह समाचार भी औरगजेब के कानो तक पहुँचा। शिवाजी ने औरगजेब से अपने स्वस्थ होने की प्रसन्नता मे गरीबो को मिठाई बँटवाने की आज्ञा माँगी। औरगजेब ने उसमे अपनी कोई हानि न समझकर आज्ञा दे दी।

कई सप्ताह तक मिठाई के टोकरे जेल मे आते रहे और शिवाजी पर से उन्हे उतार कर बाहर गरीबो मे बँटने के लिए ले जाया जाता रहा। एक दिन उन्ही टोकरो मे से एक मे बैठकर शिवाजी जेल से बाहर हो गए।

शेर पिजरे से निकल गया। पहरेदार अब शिवाजी की ओर से निश्चिन्त थे। उन्हे उनके वहाँ से भाग निकलने की कोई आशका नही थी। नित्य मिठाई के टोकरे आते थे और चले जाते थे। पहरेदारो को भी खूब मिठाई और फल खाने को मिलते थे। वे सब अब शिवाजी से मित्र-भाव सा रखने लगे थे।

जिस टोकरे मे शिवाजी बैठे थे उस बेहगी को कहार नही, मराठा सरदार अपने कन्धो पर उठाए हुए थे। वह उसे एक सुरक्षित स्थान पर ले गए जहाँ पहले से शिवाजी के पुत्र शम्भाजी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

शिवाजी ने वहाँ जाकर साधू का वेश बनाया और इसी वेश मे वह मथुरा पहुँचे। उनके साथ शम्भाजी और एक अन्य

सरदार था। तीनों मथुरा से बनारस, प्रयाग होकर पहले बगाल गए और फिर वहाँ से दक्षिण पहुँचे ।]

शिवाजी के शाही वन्दीगृह से निकल भागने का समाचार दक्षिण मे फैल चुका था। शिवाजी की माता जीजाबाई नित्य उनके लौटने की प्रतीक्षा मे रहती थी। एक दिन अचानक एक साधु ने उनके चरण जाकर छुए तो वह चकित दृष्टि से उसे देखती रह गई।

"मेरा लाल।" जीजा बाई की जबान से निकला।

"माता का सेवक।" शिवाजी ने कहा।

शिवाजी के पहुँचने का समाचार विद्युत गति दक्षिण मे फैल गया। मराठे वीरो की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे झुड-के-झुड अपने स्वामी के दर्शन करने के लिए आने लगे। उनकी खोई हुई सम्पत्ति विधाता ने उन्हे लौटा दी। उनके निर्जीव बदन मे फिर से प्राणो का सचार हो उठा। उनके डूबे हुए दिल उभार खा गए। उनका जोश फिर से तरगित हो उठा।

स्थान-स्थान पर शिवाजी के लौटने की प्रसन्नता मे समारोह हुए। एक विशाल समारोह मे छत्रपति शिवाजी ने जनता को दर्शन दिए।

शिवाजी के वन्दीगृह से भाग जाने ने औरगजेब की चतुराई

को खाक मे मिला दिया। उसकी लज्जा का ठिकाना न रहा। वह कभी स्वप्न मे भी नही सोच सकता था कि शिवाजी उसकी जेल से इस प्रकार भागकर फिर अपने राज्य मे पहुँच सकता है।

६

सिहगढ़ विजय

औरगजेब ने शिवाजी के भाग निकलने को अपना घोर अपमान माना। उसका विचार था कि उसके इस भाग निकलने मे महाराज जयसिह और उनके पुत्र रामसिह का हाथ था। इसलिए उसने अपने क्रोध का गुबार उन्ही पर निकाला। औरगजेब ने आज्ञा प्रसारित की कि रामसिह भविष्य मे कभी शाही दरबार मे न आए।

महाराज जयसिह के स्थान पर औरगजेब ने राजकुमार मुअज्जम और जसवतसिह को शिवाजी को दण्डित करने के लिए भेजा परन्तु इन दोनो मे हो शिवाजी पर हाथ डालने का साहस नही था।

शिवाजी ने इन्हे कई बार युद्ध मे क्षति पहुँचाई परन्तु क्योकि इतने दिन मे शिवाजी की शक्ति काफी छिन्न-भिन्न हो गई थी इसलिए उन्होने इस समय मुगलो से सन्धि करना ही उचित

समझा। इस सधि मे पूना का इलाका शिवाजी को मिल गया। चाकरणा और सूपा प्रान्त भी शिवाजी को सौंप दिए गए।

यह सधि लगभग तीन वर्ष तक चलती रही। इस बीच मे दोनो ओर से सधि को भग करने का कोई कारण उपस्थित न हुआ परन्तु औरंगजेब इस सधि से सतुष्ट न था। वह इसे अपना हर प्रकार से अपमान ही समझता था क्योकि इसमे शिवाजी की सब शर्ते मान ली गई थी।

औरगजेब ने मुअज्जम को फरमान भेजा कि वह शिवाजी को धोखा देकर शिवाजी के सेनापति प्रताप राव गूजर को बन्दी बना ले। मुअज्जम को इस फरमान की पहले से ही सूचना मिल गई। इसलिए उसने अवसर देखकर फरमान आने से पूर्व ही प्रताप राव को मार डाला। मुअज्जम औरगजेब के समान विश्वासघाती नही था। वह विश्वासघात करना भी नही चाहता था।

शिवाजी को जब ओरंगजेब के फरमान की सूचना मिली तो उन्होने युद्ध की तय्यारी आरम्भ कर दी। अब वह भी चैन से बैठने वाले नही थे। उन दिनो शिवाजी रायगढ मे थे। माता जीजाबई ने शिवाजी से सिहगढ को अपने अधिकार मे करने की आज्ञा दी।

सिहगढ पर उस समय मुगल प्रतिनिधि उदयभानु का अधिकार था। उदयभानु बहुत ही विशालकाय था। शक्ल-सूरत से दैत्य मालूम देता था। उसने अपने किले मे चन्द्रावली नामक खूनी हाथी को पाला हुआ था। उस पर विजय प्राप्त

करना कोई सरल कार्य नही था।

शिवाजी का इस समय सबसे बड़ा साथी तानाजी मालसुरे था। यह उनके बाल सखा थे और उनके ऊपर अपने प्राणो को न्यौछावर कर सकते थे। शिवाजी ने इस कार्य के लिए उन्हे बुलाया। जिस समय उनके पास शिवाजी का सन्देश पहुँचा तो वह अपने पुत्र के विवाह-कार्य मे स लग्न थे। उन्होने उस काम को उसी जगह छोड़ दिया और रायगढ के लिए प्रस्थान किया।

शिवाजी के पास बारह हजार सेना थी परन्तु वह रण मे कुशल नही थी। सब नई भर्ती की हुई थी। उसी को लेकर ताना जी ने सिहगढ पर चढाई करने का निश्चय किया। ताना जी शिवाजी से गले मिले। माता जीजाबाई ने ताना जी का तिलक किया और उन्हे जयमाला पहनाई। ताना जी ने माता जीजाबाई के चरण छूकर सिहगढ पर विजय प्राप्त करने की प्रतिज्ञा ली।

सिहगढ एक पहाडी पर स्थित था। पहाडी भी दुर्गम थी। उसके ऊपर चढने का मार्ग बहुत कठिन था परन्तु ताना जी के साहस के समक्ष यह दुर्गमता कुछ नही थी।

ताना जी ने शिवाजी से गले मिलकर और माता जीजाबाई के सामने सिर झुकाकर सिहगढ की ओर प्रस्थान किया। दुर्गम मार्ग को पार करके तानाजी अपने वीर सेनिको के साथ सिहगढ दुर्ग पर पहुँच गए। वहा जाकर आपने गढ के नीचे अपनी चादर बिछाकर उस पर दस बीडे पान के रखे और ओजस्विनी वाणी मे बोले, "वीरो! जिस वीर मे साहस हो वह

पान का बीडा उठाए और रस्सी बाधकर दुर्ग की दीवार पर चढे।"

यह कार्य इतना सरल नही था। बारह हजार सैनिको मे से किसी का भी बीडा उठाने का साहस न हुआ। तब तानाजी बोले, "कोई बात नही है वीरो! इस दुष्कर कार्य को ताना जी करेगा।" यह कहकर तानाजी स्वय इस कार्य को करने के लिए कटिबद्ध हुए।

दाँतो में तलवार पकडकर मराठा सिपाही कमन्द के सहारे गढ की दीवारो पर चढ़ने लगे। सबसे आगे ताना जी थे। अभी केवल पचास सैनिक ही ऊपर चढ पाए थे कि कमन्द टूट गई। ऊपर के सैनिक ऊपर और नीचे के नीचे रह गए। ऊपर जो पचास सैनिक चढे थे, उन्होंने किले के बारह सौ सैनिको से लोहा लिया और उन्हे मौत के घाट उतारकर सिहगढ पर विजय प्राप्त की।

उदयभानु ने अपने बारह पुत्रो को युद्ध मे भेजा और जब वे बारह-के-बारह मृत्यु को प्राप्त हो गए तो वह स्वय भूखे भेडिये की तरह मैदान मे उतरा। ताना जी और उदयभानु की काफी देर तक आपस मे तलवारे बजती रही। अन्त मे दोनो ही घायल होकर भूमि पर गिर पडे। उदयभानु की मृत्यु के बाद उसके भाई सूर्याजी ने आक्रमण किया परन्तु वह भी मारा गया।

गढ पर शिवाजी का झण्डा फहरा दिया गया। गढ के

बाहर के झाड-झकाडो को जलाकर शिवाजी को गढ पर अधिकार करने की सूचना दी गई। समाचार पाते ही शिवाजी घोडे पर चढकर सिहगढ मे आ गये।

गढ मे एक ओर विजय का उत्सव मनाया जा रहा था और दूसरी ओर शिवाजी अपने बालसखा तानाजी के शव के पास बैठे आँसू बहा रहे थे।

सेनिको ने शिवाजी को विजय की बधाई दी परन्तु शिवा जी के मुख से ये शब्द निकले, "गढ आला पण सिह गेला।" इसका अर्थ था कि गढ पर तो विजय प्राप्त कर ली परन्तु सिह चल बसा।

ताना जी की मृत्यु क शोक को शिवाजी अपने आगामी जीवन मे कभी न भुला सके। वह तानाजी ही थे जिनके सहयोग से शिवाजी ने यह पराक्रम दिखाया था।

शिवाजी ने अभी तक कितने ही युद्ध किये थे और दक्षिण के पर्याप्त भू-भाग को अपने आधीन कर लिया था, परन्तु आप की गिनती जागीरदारो मे ही थी। मराठा-राज्य जो आपने स्थापित किया वह जागीर विविध सधियो के फलस्वरूप जागीर ही माना जाता था, पृथक राज्य नही। यह शिवाजी को अच्छा नही लगता था।

अब शिवाजी ने जागीरदार से राजा का पद प्राप्त करने के लिए एक विशाल समारोह किया जिसमे विधिवत् आपका राजतिलक किया गया। इस उत्सव मे लगभग पचास हजार ब्राह्मणो ने भाग लिया। दो लाख से अधिक अन्य लोग सम्मि-

लित हुए । इस अवसर पर ब्राह्मणो को दान-दक्षिणा दी गई । माता जीजाबाई ने दोनो हाथो से दान दिया । लगभग छः करोड रुपया इस समारोह मे बाँटा गया ।

माता जीजाबाई सम्भवत. इसी शुभ घडी को अपनी आँखो से देखने के लिए इस समय तक जी रही थी । इस समारोह के बारह दिन पश्चात् आपका देहान्त हो गया ।

राजतिलक के पश्चात् शिवाजी ने मराठा राज्य का विस्तार करने के लिए कर्नाटक पर आक्रमण किया । यह धावा शिवाजी ने सत्तर हजार सैनिको को साथ लेकर किया था । हैदराबाद का नवाब अब्दुल हमन भयभीत हो उठा । उसने शिवाजी का प्रतिरोध करने का साहस न किया और घुटने टेक दिए । विलोर ने भी आत्म-समर्पण कर दिया । शिवाजी ने शत्रु की सेना को कृष्णा नदी के दूसरी पार करके दोआबा पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया ।

शिवाजी ने एक वर्ष के अनथक परिश्रम से मराठा राज्य की सीमा का इतना विस्तार किया कि वह दुगुना हो गया । यही वह समय था जब शिवाजी के राज्य का सर्वाधिक विस्तार हुआ । इस समय उनका भाग्य शिखर आकाश के मध्य मे चमक रहा था । मुगल बादशाह भी शिवाजी से थर्राता था । दक्षिण की ओर जाने का उसके सेनापतियो का साहस समाप्त हो गया था ।

बीजापुर और गोलकुण्डा की रियासतो के नवाब अपने अस्तित्व को शिवाजी की कृपा से ही कायम रखे हुए थे ।

१६८० ई० मे मार्च का महीना था और शिवाजी एक युद्ध से लौट रहे थे। आते-आते आप मार्ग मे ही बीमार हो गए। उनके एक पैर का घुटना सूज गया। आप केवल सात दिन बीमार रहकर ३ अप्रैल सन् १६८० ई० को स्वर्ग सिधार गए। महाराष्ट्र का नही भारत का सूर्य अस्त हो गया।

शिवाजी एक विचित्र प्रतिभा सम्पन्न वीर सेनानी थे जिन्होने साधारण स्थिति से अपनी असाधारण प्रतिभा, रण-कौशल, नीतिकुशलता, दूरदर्शिता, महत्वाकाक्षा और हिन्दू राज्य स्थापित करने की लगन के फलस्वरूप दक्षिण भारत मे एक महान् साम्राज्य की स्थापना कर भारतीय सस्कृति की रक्षा की। भारत राष्ट्र आपके इस महान् उपकार को कभी नही भुला सकेगा।

हरीसिंह नलवा

हरिसिंह नलवा

१

बाल-काल

पंजाब भारत का उत्तर-पश्चिम प्रदेश है। उससे लगा-हुआ अफगानिस्तान है और उसी दिशा में खैबर और बोलन दो दर्रे हैं जिनसे होकर प्राचीन काल में भारत पर आक्रमण हुए हैं। विदेशी लोगों ने इसी दिशा से भारत पर आक्रमण किए हैं। यूनानी सम्राट सिकन्दर इसी दिशा से आये और फिर यवनों और हूणों ने इसी दिशा से आक्रमण किये। प्राचीन

काल मे भारत जब-जब पदाक्रात हुआ है और लूटागया है तब-तब इसी दिशा से विदेशी आक्रमणकारी आये है।

इन आक्रमणकारियो को सबसे पहले पजाब के वीरो से टक्कर लेनीपडी है। इस प्रकार पजाब प्राचीन काल से ही भारत का द्वार-रक्षक रहा है। इसके वीरो ने विदेशी आक्रमण-कारियो के दांत खट्टे किये है और उन्हे भारत पर आक्रमण करने का आनन्द चखाया है। विश्व-विजेता सिकन्दर के पुरु ने दॉत खट्टे किये थे।

पजाब-प्रान्त ने भारतीय इतिहास को सदा-सर्वदा स्मरण करने योग्य वीर प्रदान किये है। प्राचीन और आधुनिक दोनो ही युगो मे इन वीरो ने जन्म लिया है। इनमे पुरु, राणा रणजीतसिह, हरीसिह नलवा, बन्दा वैरागी, गुरु गोविन्दसिह लाला लाजपतराय, सरदार भगतसिह इत्यादि के नाम उल्लेख-नीय है।

पुरु ने सिकन्दर से टक्कर ली, गुरु गोविदसिह और बन्दा-वैरागी ने मुगलो के दॉत खट्टे किए और लाला लाजपतराय तथा सरदार भगतसिह ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जडे हिलाई। पजाब सर्वदा से वीरो की जन्म-भूमि रहा है। भारतीय सेना के जवानो मे भी पजाबी जवान अपने विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखते है। पजाब-रेजीमेन्ट ने गत महायुद्ध मे जो अपूर्व शौर्य प्रदर्शित किया।

वीर वन्दा वैरागी ने पजाब मे इक्कीस मिसलो की स्थापना की थी। इनमे हर मिसल का एक सरदार होता था और उसके आधीन कई सहस्त्र सैनिक होते थे। ये मिसले वन्दा

वैरागी ने भारतीय जनता को यवनो के अत्याचारो से बचाने के लिए बनाई थी। इन सरदारो ने मुगल-शासन की निरकुश प्रवृत्तियो को रोकने और भारतीय जनता को सुरक्षा प्रदान करने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया।

हरदाससिंह मजीठ इन्ही मिसलों मे से एक मिसल के सरदार थे। आप जिला अमृतसर के रहनेवाले खत्री थे। इनके पुत्र गुरदयालसिंह की वीरता की पजाब मे अच्छी धाक थी। गुजरावाले के महाराज महासिह के यह माने हुए सरदार थे और उनके शत्रुओ को आपने नाको चने चबाये थे। आपने और सरदार चढतसिंह ने अनेको स्थानों पर युद्ध-क्षेत्र मे विजय प्राप्त की थी। आपसे प्रसन्न होकर महाराज महासिंह ने आपको लाहौर के निकट शाहदरा के पास एक जागीर प्रदान की थी।

इसी वीर सरदार के घर में सन् १७६६ मे एक पुत्र ने जन्म लिया। इस बालक के जन्म पर सरदार गुरुदयाल-सिंह ने विशेष उत्सव का आयोजन किया, जिसमे महाराज महासिंह ने भी भाग लिया। पुत्र-जन्म की प्रसन्नता में गुरु-दयालसिंह ने यह उत्सव खूब गाजे-बाजे के साथ मनाया। निर्धन व्यक्तियों को दान दिया और बालक का नाम हरिसिंह रखा।

यही वीर बालक आगे चलकर हरिसिंह नलवा के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिसकी धाक अफगानिस्तान और बिलोचि-स्तान तक फैलगई। इसके आने की सूचना पाकर बिलोच और अफगानिस्तानियो के दिल कांप उठते थे। फारसी

मे नलवा शब्द का अर्थ शेर है। इस वीर की वहाँ इतनी धाक थी कि स्त्रियाँ अपने बच्चो को सुलाते समय कहा करती थी, "सोजा-सोजा, हरिसिह नलवा आरहा है।" विदेशी लोग इस वीर से उसी प्रकार भय खाते थे जिस तरह जगल के राजा शेर का मुँह देखकर मनुष्य काँपने लगते है और उनके बदन मे थरथरी आजाती है।

हरिसिह नलवा जब पाँच वर्ष का हुआ तो उसने पढना आरम्भ किया। पढ़ाई का प्रबन्ध घर पर ही किया गया। आपके दो शिक्षक थे, एक गुरमुखी पढाता था और दूसरा फ़ारसी।

हरिसिह नलवा जब सात वर्ष का हुआ तो परिवार पर आपत्ति का पहाड टूटपडा। अचानक आपके पिता गुरदयाल-सिह की मृत्यु होगई। इस घटना से आपका पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त होगया।

हरिसिह की माता धर्मकौर हरिसिह को अपने साथ लेकर अपने भाई के पास चलीगई। हरिसिह के मामा भी एक वीर सरदार थे। उन्होने हरिसिह को युद्ध-विद्या मे निपुण किया। तीर चलाना, घोड़े की सवारी करना, नेजा चलाना, यह सब मामा ने ही उन्हे सिखाया।

हरिसिह खेल-कूद में भी बहुत प्रवीण था। घर मे बैठना तो वह जानता ही नही था। रात-दिन जगलो मे चक्कर लगाया करता था। उसने गाँव के लडको की एक चौकडी बनाली थी, जो उसे अपना सरदार मानते थे। सरदार बनने की ठनक उसमें बचपन से ही थी।

धीरे-धीरे हरिसिंह बड़ा होरहा था। वह शरीर का पुष्ट और वलवान था। दौड़ लगाने का उसे बहुत शौक था। एक वार लोहडी का दिन आया। लोहड़ी का उत्सव मनाने के लिए गाँव के वच्चों ने स्थान-स्थान पर लकड़ियो के ढेर लगाये। सध्या-समय इन लकडियो के ढेरो मे अग्नि प्रज्वलित कीगई। कुछ लडके खेतो मे से गन्ने उखाड लाये और उन्हे अग्नि मे जलाना आरम्भ करदिया। गन्नो के जलने से उनमे पटाखो की सी आवाजे आनेलगी।

वच्चे नये वस्त्र पहनकर इधर-उधर घूम रहे थे। सव खुशी मना रहे थे, सारा देहात प्रसन्नता से भरउठा था।

उसी समय दो संन्यासियो ने ग्राम मे प्रवेश किया। सव लोगो का ध्यान उन सन्यासियो की ओर आकृष्ट होगया। वे मस्ती मे गाते हुए आरहे थे। एक के हाथ मे डफली थी और दूसरे के हाथ मे इकतारा। वे दोनो जयमल-फत्ता की वीर-गाथा गारहे थे।

जयमल-फत्ता वही वीर था जिसने मुगलों के दाँत खट्टे किये थे। उसने अकवर की सेना को नाको चने चवाये थे और कई मास तक चित्तौड़ की भूमि पर उन्हे कदम नहीं रखने दिया था। गाना इतना ओजपूर्ण और जोशीला था कि सुननेवालों के रोगटे खड़े होगये उसे सुनकर। वीर युवको की भुजाएँ फडक उठी।

उसी समय एक युवक भीड़ को चीरकर आगे वढा और गरजकर वोला, "कहाँ है वह वादशाह अकवर जो हमारी वीर-भूमि चित्तौड़ को पदाक्रांत करना चाहता है? मैं अभी

एक क्षण मे अपनी कृपाण से उसका काम तमाम कर देता हूँ।"

वह युवक हरिसिह था। उसके मामा ने आगे बढकर हरिसिह को अपनी कौली मे भर लिया और दुलार से बोले, "पगले कही के। यहाँ अकबर कहाँ है ? यह तो ये सन्यासी लोग जयमल-फत्ता की वीरगाथा गारहे है।"

हरिसिह का जोश तब भी ठडा न हुआ। वह उतने ही क्रोधपूर्ण स्वर मे बोला, "नही, मामा जी, नही। मैं मुगलो से गिन-गिनकर बदला लूंगा। मैं भारत माता को मुगलो के चगुल से मुक्त करूँगा। मैने जिस जननी जन्म-भूमि का अन्न खाया है उसके लिये अपने प्राणो को न्योछावर करूँगा।"

यह थी वह प्रतिज्ञा जो हरिसिंह ने अनायास ही करली। उसे उसके मामा और अन्य उपस्थित पारिवारिक जनो तथा उसके साथियो ने समझा-बुजाकर शान्त किया। हरिसिह का जोश बहुत देर में कम हुआ परन्तु वीरता का सागर जो उसके हृदय मे उमड़कर आया वह फिर शान्त न होसका। उसमे तूफान आता ही रहा, जोश की लहरे उठती ही रही। वे फिर आजीवन बनीरही, कभी शान्त नही हुई।

एक दिन हरिसिह घर से निकला और सध्या तक नही लौटा। सारा दिन भूखा-प्यासा जगल मे घूमता रहा। वह सोचरहा था कि वह अपनी मातृभूमि को कैसे स्वतन्त्र कर सकता है। उसे यह भी ज्ञान न रहा कि कब सध्या हुई, कब सूर्य अस्त हुआ, कब रात्रि का गहन अंधकार भूमि पर छा-

गया। उसी अंधकार मे उसने किसी स्त्री के कराहने की आवाज सुनी।

हरिसिह के कानो मे जिस दिशा से आवाज आई थी, वह उसी ओर को चलपड़ा। चलता-चलता वह एक खडहर के निकट पहुँचा। उसने देखा उस खडहर मे एक स्त्री बैठी दहाडे मार-मारकर रोरही थी। उसके बाल खुलेहुए थे और वह बुरी तरह छाती पीटकर रोरही थी।

हरिसिह ने पूछा, "बहन! तुम कौन हो? तुम किस लिए इतनी बुरी तरह बिलख-बिलख कर रोरही हो? तुम्हे किसने कष्ट पहुँचाया है?"

हरिसिह की आवाज सुनकर वह स्त्री चौंकी और करुण स्वर मे बोली, "तुम कौन हो बालक जो इतनी घोर रात्रि में यहाँ आये? तुम अभी बहुत छोटे हो। मेरा कष्ट अपार है। तुम मेरी क्या सहायता करसकते हो?"

यह सुनकर हरिसिंह बोला, "देवी! मैं बालक अवश्य हूँ, परन्तु मैं सिंह की सन्तान हूँ। मैं शेर का बच्चा हूँ। शेर का बालक कभी बच्चा नही होता। यह देख रही हो, मेरे हाथ मे कृपाण चमचमा रही है। तुम अपना कष्ट कहो, मै उसका निवारण करूँगा।"

बालक के ये वीरतापूर्ण शब्द सुनकर वह स्त्री उठकर खडी हुई। उसने हरिसिह का सिर चूमा और स्नेहपूर्ण स्वर मे बोली, "भाई! तुम्हारी बात सच है, परन्तु मेरा कष्ट इतना अधिक है कि उसके निवारण के लिए तुम्हारी शक्ति पर्याप्त नही है। क्या तुम देख नही रहे हो कि विदेशी हमारे

देश मे आकर अबलाओ पर कितने अत्याचार के पर्वत गिरा रहे है ? मेरा कष्ट केवल अपना ही कष्ट नही है। यह भारत की सभी अबलाओ का कष्ट है। मेरे दिल मे सभी के अपमान की ज्वाला धधक रही है। इस कष्ट का निवारण करना इतना सरल कार्य नही है।

इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए शक्ति का सगठन करना होगा। सगठन किये बिना यह कार्य कभी सिद्ध न होगा। विदेशियो से भारत की अबलाओ को त्राण देना एक व्यक्ति के बूते की बात नही है।"

हरिसिह जोशीले स्वर मे बोला, "बहन ! इस सिह-पुत्र को तुम इतना छोटा और अशक्त न समझो। मै अपनी कृपाण छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जबतक मेरे शरीर में प्राण रहेगे और एक भी श्वास चलता रहेगा मैं तब तक माता की सेवा करता रहूँगा। मैं अपनी वीर जननी के दूध की सौगध खाकर कहता हूँ कि मै जब तक पजाव की भूमि से विदेशियो को खदेडकर बाहर नही करदूँगा तब तक चैन न लूंगा। इसके लिए मै अपना सारा जीवन समर्पित करता हूँ।"

हरिसिह के ये शब्द सुनकर उस स्त्री के नेत्रो मे जल भरआया। उसने हरिसिह के सिर पर हाथ रखकर ओज-पूर्ण शब्दो मे कहा, "वीर बालक ! तुम मुझे अबला न समझना। यह बहन हर समय छाया के समान तेरे साथ रहकर हर सकट मे तेरी सहायता करेगी। तेरी रक्षा का भार यह सर्वदा अपने कधो पर वहन करेगी। परमात्मा तेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण करे।"

हरिसिह ने वहन हरशरणकौर के चरण छूकर उनसे विदा ली और अधकारपूर्ण रात्रि मे अपनी प्रतिज्ञा को दुहराते हुए आगे बढगया ।

रणजीतसिंह के दरबार में

२

हरिसिह की आयु अब तेरह वर्ष की होगई थी। उसके हृदय मे मातृभूमि के उद्धार की ज्वाला सुलग रही थी। उसने इस छोटी-सी आयु मे ही कठोर व्रत धारण करलिया था। इस व्रत की पूर्ति के लिए हरिसिह ने तेरह वर्ष की आयु मे ही मामा और माता के स्नेह को तिलाजलि देकर घर छोड़ दिया।

हरिसिंह को बहन हरशरणकौर को दिए हुए वचन याद थे। उसके कानो मे उसकी प्रतिज्ञा के बोल चौबीसो घटे बजते रहते थे। हरिसिंह चलता-चलता रावी नदी के तट पर पहुँचगया। रावी नदी पूर्ण वेग के साथ बहरही थी। उसमे अथाह जल था। उसका ओर-छोर कही भी दिखाई नही देता था।

हरिसिंह ने दूर-दूर तक दृष्टि फैलाई परन्तु कही कोई नौका दिखाई नही दी। बरसात की बाढ आरही थी। ऐसे मे रावी के अन्दर नौका डालना मृत्यु का आह्वान करने से कम नही था।

हरिसिंह इसी सोच मे था कि नदी को कैसे पार किया जाये। सरिता की उठती हुई तरगो और उसके जल में पडते हुए भँवरो को देखकर हरिसिंह थोडा डावाँडोल हुआ। परन्तु

वह अधिक देर तक डॉवाडोल न रहा । उसने नदी को तैरकर पार करने का निश्चय किया और पानी मे कूदपडा ।

सरिता मे अथाह जल था परन्तु जोश की थाह हरिसिह के दिल मे भी नही थी । हरिसिह नदी की लहरो और उसके भँवरो से लडता-झगडता आगे बढनेलगा । वह अब निर्भय था । उसने साहस के साथ तैरकर सरिता को पार किया और देखते-ही-देखते सरिता के दूसरे किनारे पर जाखडा हुआ । जो व्यक्ति दृढ प्रतिज्ञ होकर आपत्ति का सीना चीरने के लिए उद्यत हो, उसे भला कौन रोक सकता है ? ससार की कोई शक्ति उसके मार्ग मे बाधा उपस्थित नही कर सकती ।

हरिसिह भीगे ही वस्त्र पहने सरिता के किनारे से आगे बढगया । चलता-चलता वह एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहॉ कुछ साधू बैठे थे । उनके बीच मे आग जलरही थी और वे उसपर तप रहे थे । हरिसिह ने वहॉ अपने गीले वस्त्रो को उतारकर सूखने के लिए फैलाया और स्वयँ आग के पास बैठकर तपने लगा ।

साधुओ से बाते करने पर उसे पता चला कि लाहौर मे महाराज रणजीतसिह बसन्त पंचमी पर अपना दरबार लगाते है । महाराज रणजीतसिह की वीरता की प्रशसा हरिसिह पहले से सुनचुका था । इस अवसर पर महाराज युवको के खेल कराते थे और उन युवको को सेना मे स्थान देते थे ।

हरिसिह ने वही से निश्चय कर लिया कि वह महाराज रणजीतसिह के दरबार मे- जायेगा और यदि सम्भव होसका

तो सेना मे प्रवेश प्राप्त करेगा। यह सकल्प कर हरिसिह उस रात्रि को उन साधुओ के ही पास ठहरा।

दूसरा दिन वसत पचमी का दिन था। प्रात काल होते ही वह वहाँ से चलपडा। हरिसिह ने नगर मे प्रवेश किया तो उसने देखा कि नगर के निवासी पीत वस्त्र धारण किये आनद पूर्वक बाजारो मे घूम रहे थे। आमोद-प्रमोद का जीवन उन नागरिको की वेश-भूषा में से झाँकता प्रतीत होरहा था। बालक खेलते-कूदते फिररहे थे। सडको पर बाज़ार लगा था। दूकाने पर्व की प्रसन्नता मे बाहर निकल आई थी। उनपर भाँति-भाँति के सामान सजे हुए थे। खिलौने वाला खिलौने बेच रहा था। मिठाई वाला मिठाई, सब्जी वाला सब्जी और इसी प्रकार हर चीज का बाजार लगा था।

हरिसिह का ध्यान उन सब चीजो की ओर नही था। उनके मन मे एक ही लगन थी और उसी की पूर्ति को अपना लक्ष बनाकर वह अपने मार्ग पर आगे बढरहा था। लोग-बागो से पूछता हुआ वह खेल के मैदान में जापहुँचा। वहाँ की भी छटा निराली ही थी। उसे देखकर वह चकित रह गया।

हरिसिह ने देखा, खेल के मैदान के एक ओर महाराज रणजीतसिह का सिहासन था। महाराज अपने सिहासन पर बैठे थ। उनके मत्री उनके निकट अपने-अपने आसनो पर शोभायमान थे। उसके निकट ही एक रगीन पर्दा टँगा हुआ था। उसके अन्दर राज-घरानो की स्त्रियाँ बैठी थी। सामने की ओर दर्शको की भीड थी, जिसमे नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति

वैठे थे। उनके पीछे जनता की अपार भीड थी। जहाँ तक भी दृष्टि जाती थी दर्शको के सिर-ही-सिर उसे दिखाई पडते थे।

हरिसिह एक कोने मे खडा यह दृश्य देखरहा था। मैदान अभी खाली पडा था।

उसी समय धौसे पर चोट पडी और खेल आरम्भ हुए। एक-से-एक सजीला युवक मैदान मे उतरा। भीड के अन्दर से युवक निकल-निकल कर मैदान मे पक्तियाँ वनानेलगे। हरिसिह ने युवको को आगे वढते देखा तो वह भी वल्लियो पर से कूदकर एक पक्ति मे जाखडा हुआ।

महाराज रणजीतसिह की घुडसाल के सजीले घोडो को लिएहुए तभी साईसो ने मैदान मे प्रवेश किया। घोडो को देखकर युवको मे कुछ खलबली सी मची। उनमे से हर एक पहले आगे वढकर घोडे पर सवारी गाँठने के लिए उतावला होउठा।

जनता की अपार भीड इस दृश्य को देखकर उसमे आनन्द लेरही थी। वे अपने ही स्थानो पर उठकर खड़े होगये थे। खेल आरम्भ होने के प्रति उनके मन मे उतावलापन था। उनके नेत्र युवको और घोडो पर टिकेहुए थे।

सव युवको को एक साथ घोड़ो पर चढने की आज्ञा दी गई। हरिसिह की दृष्टि जिस घोडे पर थी वह दौडकर उसी पर सवार होगया। फिर दौड आरम्भ हुई। इस दौड़ मे हरिसिह अन्य युवको को अपने से वहुत पीछे छोडकर तीर की तरह महाराज रणजीतसिह के निकट पहुँचगया। हरिसिह

ने घोड़े से कूदकर महाराज रणजीतसिह के चरण छुए और महाराज ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया। हरिसिह को अपने श्रम का फल मिल गया। उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा।

घुडदौड के पश्चात् नेजा चलाने का खेल आरम्भ हुआ। सब युवको के हाथ मे एक-एक नेजा दिया गया। नेजे लेकर युवक मैदान मे उतर पडे और घोडो पर फिर से सवार हो गये। फिर चार-चार युवको के दल बनाये गये। परीक्षा के लिये एक-एक युवक को चार-चार के दल से लडनापडा। युवक एक-दूसरे पर टूटपडे। लग रहा था जैसे भयकर युद्ध छिड गया था। युवक एक-दूसरे पर वार कररहे थे और अपने को बचारहे थे। हरिसिह ने नेजे के युद्ध मे वह पराक्रम दिखाया कि दर्शक देखकर दग रहगये। उसने चार-चार के कई दलो को परास्त करदिया। उसके सामने आने का एक भी युवक मे साहस न रहा।

महाराज रणजीतसिह इस दृश्य को अपने सिहासन पर वैठे देखरहे थे। जब उन्होने देखा कि हरिसिह ने मैदान खाली कर दिया तो वह स्वयँ गद्दी से उठकर हरिसिह के पास पहुँचे और उसे छाती से लगा लिया। महाराज ने हरिसिह के अन्दर एक अनोखी प्रतिभा के दर्शन किये।

नेजे के खेल के पश्चात् मैदान मे तलवारे चमचमा उठी। हरिसिह ने भी तलवार हाथ मे सँभाली और मुस्कराकर उसे चारो ओर घुमाता हुआ वह खेल के मैदान मे आगया। परन्तु अव उसका रौव उन युवको पर ऐसा छागया था कि एक भी

युवक उसके सानने आने का साहस न करसका। तब हरिसिह महाराज रणजीतसिह के निकट जाकर तलवार उनके चरणों मे रखकर बोला, "महाराज! मै सब युवको को एक साथ मैदान म आने का आह्वान करता हूँ।" परन्तु हरिसिह के सामने तलवार लेकर आना सरल कार्य नही था। एक भी युवक आगे न बढा।

महाराज रणजीतसिह हरिसिह से बहुत प्रसन्न हुए। दूसरे दिन मल्ल-युद्ध के लिए निश्चित किया गया। मल्ल-युद्ध के दिन खेल के मैदान मे पहले दिन से भी अधिक भीड थी। सारे नगर मे हरिसिह के नाम की धूम मचगई थी।

मल्ल-युद्ध मे भी हरिसिह सर्वश्रेष्ठ रहा। उसने अपने से कद्दावर युवको को भी पलक मारते ही पछाड दिया। हरि-सिह के कौशल को देखकर महाराज रणजीतसिह बहुत प्रभा-वित हूए। उन्होने इस युवक को विशेष सम्मान प्रदान किया।

मल्ल-युद्ध के पश्चात् तीरन्दाजी की भी परीक्षा हुई। हरिसिह धनुष-बाण चलाने मे भी बहुत निपुण था। उसमे भी उसका निशाना अन्य युवको की अपेक्षा अधिक सही रहा।

खेल कार्य-क्रम समाप्त होने के पश्चात् महाराज रणजीत-सिह ने हरिसिह का परिचय प्राप्त किया। हरिसिह ने जब अपने पिता का नाम बताया तो महाराज रणजीतसिह गद्-गद् होउठे। अपने वीर सेनापति गुरुदयालसिह के पुत्र का कौशल देखकर उन्हे गुरुदयालसिह की स्मृति होआई।

महाराज हरिसिह को स्नेह से अपनी बाहुओ मे भरकर बोले, "तुम वीर पिता की वीर सन्तान हो हरिसिह ! तुम्हारे पिता भी ऐसे ही वीर थे। जब तक वह हमारे सेनापति-पद पर रहे, हमे कभी शत्रु की चिन्ता नही रही।"

हरिसिह सीनातान कर बोला, "महाराज ! मेरे रहते कोई शत्रु इधर झाकने का भी साहस न करसकेगा।"

"मै तुमसे यही आशा करता हूँ।" महाराज रणजीतसिह विश्वासपूर्ण स्वर मे बोले।

महाराज रणजीतसिह ने हरिसिह को अपने अगरक्षक-पद पर नियुक्त कर लिया।

कसूर पर अधिकार

३

एक दिन महाराज रणजीतसिह शिकार खेलने के लिए जगल मे गये। बहुत घिनका वन था और उसमे बाघ रहता था। दैवयोग से उस दिन प्रात काल से सध्या होगई और कोई जगली जानवर उनके सामने न आया, जिसका शिकार किया जासके। घोडे और सैनिक सब थककर चूर-चूर होगये।

उसी समय एक बाघ झाडो से निकल आया। बाघ इतनी फुर्ती से हरिसिह पर झपटा कि हरिसिह अपनी कृपाण भी न निकाल सके। बाघ अपना जबाडा फाड़कर हरिसिह पर टूटपडा। हरिसिह ने जब देखा कि अन्य कोई उपाय नही था उससे बचने का तो उन्होने बाघ के दोनो ओर के जबडो को अपने दोनो हाथो से पकड लिया। बाघ तिल-मिला उठा। उसने बहुत जोर मारा परन्तु वह अपने जबाड़े को न छुडासका। तब उसने पजो से हरिसिह पर आघात करना आरम्भ किया।

महाराज रणजीतसिह ने जब यह देखा कि वह बाघ हरिसिह पर झपट पडा है तो वह घोडा दौड़ाते हुए घटना-स्थल पर आपहुँचे परन्तु उनके आने से पूर्व ही हरिसिह ने बाघ का जबाड़ा चीर डाला था और उसे धराशायी कर दिया था। बाघ भूमि

पर गिरकर तडप रहा था। उसके मुँह से रक्त की धारा बह रही थी।

महाराज रणजीतसिंह हरिसिंह के इस पराक्रम को देखकर दंग रहगये। उनके अन्य साथियो के तो आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। महाराज हरिसिंह को छाती से लगाकर बोले, "हरिसिंह! तुमने कमाल कर दिया। आज से तुम्हे मैं अपना सेनापति-पद प्रदान करता हूँ। इस सिंह को मारने के उपलक्ष मे मैं तुम्हे 'नलवा' पदवी प्रदान करता हूँ।"

उस दिन के पश्चात वहहरिसिंह नलवा के नाम से प्रसिद्ध हुए, अर्थात् हरिसिंह शेर।

महाराज रणजीतसिंह ने अपने दरबार के चित्रकार को आज्ञा दी कि वह हरिसिंह नलवा का सिंह को पछाडते हुए चित्र बनाकर दरबार मे लगाये।

रणजीतसिंह ने हरिसिंह को अपना सेनापति नियुक्त कर दिया। हरिसिंह ने सेनापति बनते ही रणजीतसिंह का प्रभाव पंजाब मे व्यापक करने का स्वप्न देखा। उसने अपनी सैनिक शक्ति को दृढ करना आरम्भ किया और अपने इलाके का एक दौरा करके जनता को मजबूती के साथ जमकर इधर-उधर से घुसआने वाले यवनो से कडाई के साथ मुकाबला करने का आदेश दिया।

हरिसिंह नलवा ने सीमावर्ती गाँवो के युवको को राज्य की ओर से शस्त्र बँटवाये और उनके गाँवो की सुरक्षा का भार उन्हे सौपकर सैना को रात्रि मे गाँवो मे गश्त लगाने का आदेश जारी किया।

पंजाब मे इस प्रकार रणजीतसिह का प्रभाव बढता देख-कर मुलतान का नवाब मुजफ्फरखॉ चौक उठा । वह सोचने लगा कि किसी प्रकार रणजीतसिह की शक्ति को कम करना चाहिए । उसने कसूर के नवाब कुतुबुद्दीन को अपने यहॉ आमन्त्रित किया और दोनो ने मिलकर सिक्खो को नष्ट करने की मत्रणा की ।

नवाब मुजफ्फरखॉ बोला, "मेरे दोस्त नवाब साहब ! हमे अब पजाब के गॉव-गॉव मे जिहाद का झडा-बुलन्द करनाहोगा । 'इस्लाम को खतरा पैदा होगया है', यह आवाज पजाब के हर मुसलमान-घर मे पहुँचा देनी चाहिए । मैं हर प्रकार से तुम्हारे साथ हूँ । तुम्हे जिस तरह की भी मदद की जरूरत होगी मै दूंगा । तुम्हे सिक्खो का सर्वनाश करना होगा । ये लोग बहुत सिर उठारहे है । इनका सिर तुम्हे कुचलना चाहिए । ऐसा न करने से तुम्हारे लिए बहुत बड़ा खतरा पैदा होने का डर है । जब हम पठान तुम्हारी पीठ पर है तो तुम्हे डरने का कोई कारण नही है । यदि तैयार हो तो हाँ कहो ।"

नवाब कुतुबुद्दीन मुज़फ्फरखॉ के चक्कर मे फस गया । सिक्खो का बीज नाश करना उसने मलाई का खाजाना समझ लिया । दोनो ने एक दूसरे से हाथ मिलाकर विदा ली और बात निश्चित होगई ।

नवाब कुतुवुद्दीन ने कसूर आकर अपने राज्य के वड़े-वड़े मौलवियो को वुलाकर उन्हें मुजफ्फरखॉ का सदेश दिया । उसने उनसे कहा कि उन्हे तुरन्त अपना प्रचार-कार्य आरम्भ

करदेना चाहिए। मौलवियो ने तुरन्त विषैला प्रचार करना आरम्भ करदिया। नवाब ने उनके मन की बात कही थी फिर वे उसे पूरा करने मे विलम्ब क्यो करते ?

इस प्रचार ने पजाब के वातावरण को दूपित कर दिया। हिन्दू और मुलमान भाई-भाई की तरह रहकर अपना जीवन व्यतीत कररहे थे। इस प्रचार ने उन्हे सशकित करके एक दूसरे का शत्रु बनादिया। दोनो के दिलो मे घृणा के अकुर उगने लगे और दोनो एक-दूसरे से भयभीत रहनेलगे।

मुसलमानो ने उत्तेजित होकर हिन्दुओ को लूटना और हिन्दू-स्त्रियो को अपमानित करना आरम्भ करदिया। धर्म के नाम पर अधर्म-कार्य होनेलगे।

हरशरणकौर उन दिनो एक भिखारिणी के वेश मे कसूर मे भ्रमण कररही थी। उसने नवाब के सारे भेदो का पता लगालिया था। एक दिन वह घोडे पर सवार होकर सीधी लाहौर के दरबार मे जापहुँची। उसने लाहौर जाकर कसूर का सारा वृतात महाराजा रणजीतसिह को सुनाया। उसने उन्हे मुजफ्फरखाँ और कुतुबुद्दीन की भेट का रहस्य भी बताया, जिससे वह मुजफ्फरखाँ की ओर से सावधान रहे।

महाराज रणजीतसिह ने यह सूचना प्राप्त कर तुरन्त सरदार फतहसिह कालियाँवाला और फकीर अजीजदीन को दूत बनाकर नवाब कसूर के पास भेजा। महाराज यह नही चाहते थे कि व्यर्थ युद्ध हो और बहुत से बेगुनाह प्राणियो की जाने जायें।

नवाब कुतबुद्दीन का पारा सातवे आसमान पर चढा हुआ था। उन्हे पता था कि पठान-शक्ति उनकी पीठ पर है। इसलिये उन्हे भय का तो कोई कारण ही नही था। उन्होने फ़कीर अजीजदीन की खूब खबर ली और कहा, "हम यहाँ तुमसे कोई बात करना पसद नही करते। अपने महाराज से कहदेना कि उन्हे जो बात भी करनी हो लडाई के मैदान मे करे।"

फतहसिह कालियाँवाला और फकीर अजीजदीन कसूर से लाहौर लौटआये। उन्होने कुतुबुद्दीन से जो बाते हुई थी महाराज रणजीतसिह को बतादी।

महाराज रणजीतसिह के लिए अब युद्ध करना अनिवार्य होगया। उन्होने अपने सेनापति हरिसिह नलवा को तुरन्त कसूर पर आक्रमण करने की आज्ञा दी।

आज्ञा की देर थी। हरिसिह नलवा तो पहल ही तैयार हुए बैठे थे। उन्होने तुरन्त सेना को सुसज्जित होने की आज्ञा दी। हरिसिह नलवा दस हजार वीरो के साथ छ तोपो को लेकर कसूर की ओर बढचले।

नवाव को पहले ही आक्रमण की सूचनामिल गई थी। उसने पच्चास हजार जवानो के साथ आगे बढकर हरिसिह नलवा का मार्ग रोका।

दस फरवरी सन् १८०७ को प्रात काल एक ओर से 'सतसिरी अकाल' और दूसरी ओर से 'अल्लाह हो अकबर' के नारे बुलन्द हुए। आकाश नारो के स्वर से गूज उठा। वायु-मडल मे केवल ये ही दो स्वर लहरा रहे थे। इनके अतिरिक्त

घोडो की टापो और हथियारो की सनासन और ठनाठन का स्वर था ।

तलवारो से तलवारे बज उठी । भाले आकाश मे चमचमाते हुए दिखाई देने लगे । घोडे विद्युत-गति से दौडने लगे । मार-काट मचगई । तोपे आग उगलने लगी । घोर युद्ध हुआ । छ घटे तक मार-काट चलती रही । हरिसिह नलवा अपने वीर सैनिको के साथ जिधर को भी निकल जाता था शत्रु का सफाया होता चलाजाता था ।

लाशो पर लाशे पटगई । रक्त की सरिता बहचली । खून से जमीन लाल होगई । अपनी बहादुरी पर गर्व करनेवाले पठान भागकर किले में जाछिपे । कसूर हरिसिह नलवा के हाथो मे आगया ।

१८ फरवरी को दुबारा युद्ध आरम्भ हुआ । हरिसिह नलवा की तोपो ने गढ पर गोले बरसाने आरम्भ किये । कसूर का दुर्ग वहुत मजवूत वना हुआ था । दस दिन तक उस पर गोले बरसते रहे परन्तु किले की एक दीवार ने भी हिलने का नाम न लिया ।

हरिसिह नलवा ने सोचा कि इस तरह कव तक इस दुर्ग का घेरा डाले पडेरहेगे । उन्होने रात्रि के अन्धकार मे कुछ चुने हुए सरदारो को वुलाकर आज्ञा दी, "वीरो ! धीरे-धीरे गढ़ की दीवार के नीचे पहुँच जाओ । वह सामने जो छत्तरी दीख रही है, उसके नीचे पहुँचो । अपने साथ धन, छेनी और कुल्हाडी लेजाकर दीवार के पत्थर खिसकादो ।"

कुछ चुने हुए वीर अपने प्राणो को हथेलियो पर लेकर रात्रि के अँधेरे मे किले की ओर बढे । वे छत्तरी के नीचे पहुँच-गये जिससे किले के ऊपर से उनपर वार न होसके । उन्होने छेनी और घन से किले की दीवार के पत्थर खोदने आरम्भ करदिये । किले की दीवारो मे स्थान बनाकर और बारूद भरकर उसमे आग लगादी । बारूद मे आग लगनी थी कि दुर्ग की दीवार का एक बडा भाग धराशायी होगया ।

हरिसिह नलवा ने 'सतसिरी अकाल' का नारा लगाया और अपने घोडे को तीर की तरह उस फूटे हुए भाग की ओर दौडा दिया । हरिसिह नलवा का आगे बढना था कि उसके सैनिक जोश मे भरगये और बात-की-बात मे वे गढ के अन्दर घुस गये ।

किले के अन्दर मारकाट मचगई । कुतुबुद्दीन के सैनिको और उसके मददगार पठानो को खोज-खोजकर तलवार के घाट उताराजाने लगा । इस मारकाट के सामने वे बेचारे 'अल्लाह हो अकबर' का नारा लगाना भी भूलगये । उनके होश उडगये । मृत्यु उन्हे अपने शीर्ष पर मँडराती दिखाई दे रही थी ।

हरिसिह नलवा की आँखे कुतुबुद्दीन को खोज रही थी । वह अपने महल मे जाकर छिपगया था । उसी समय हरिसिह नलवा को दूत ने सूचना दी कि वह अपने महल मे है । हरिसिह नलवा कुछ सरदारो को साथ लेकर महल मे जा धमके और आनन-फानन मे महल के फाटक को तुडवा डाला ।

कुतुबुद्दीन सामने ही खडा मिला। हरिसिह नलवा ने कुतुबु-द्दीन को बन्दी बना लिया।

कुतुबुद्दीन के वदी होते ही पठानो का हौसला पस्त हो-गया। वे सब इधर-उधर को भाग निकले। हरिसिह नलवा ने कसूर के दुर्ग पर राणा रणजीतसिह का झडा फहरा दिया।

नवाब कुतुवुद्दीन को वदी बनाकर लाहौर लाया गया। हरिसिह नलवा ने उसे महाराज रणजीतसिह के सामने पेश किया। महाराज रणजीतसिंह ने कुतुबुद्दीन को क्षमा करके उसके निर्वाह के लिए सतलुज नदी के पार ममदूक का क्षेत्र देदिया। इस क्षेत्र मे केवल बाईस गॉव थे।

हरिसिह नलवा पर प्रसन्न होकर महाराज ने उन्हे ३०,००० रुपये वार्षिक आय की जागीर दी।

कसूर के युद्ध ने हरिसिह नलवा की ख्याति को चार चॉद लगा दिये। पजाव भर मे उनका आतक छागया। उनके सामने पडकर शत्रु का युद्ध करने का साहस जातारहा।

मुलतान विजय

४

कुतुबुद्दीन को अपनी करनी का फल मिल चुका था परन्तु उसे भडकानेवाला मुलतान का नवाव अभी मौज से मुलतान के दुर्ग मे वैठा आनन्द की वशी बजा रहा था। कुतुबुद्दीन अव मन-ही-मन उसे कोसता था परन्तु अब कोसने से लाभ ही क्या था ? जो विनाश और प्रतिष्ठा की हानि होनी थी, वह होचुकी थी।

महाराज रणजीतसिह को दृष्टि अब मुलतान के नवाव पर पडी। १५ फरवरी सन् १८१० ई० को महाराज राजसिह की आज्ञा से हरिसिह नलवा ने मुलतान की दिशा मे कूच किया।

हरिसिह नलवा ज्योही मुलतान के निकट पहुँचे त्योही नवाव मुजफ्फरखाँ मैदान छोडकर किले मे जाघुसा। मुलतान नगर पर महाराज रणजीतसिह का खालसा-झडा फहरा दिया गया।

हरिसिह नलवा के मुलतान-नगर पर झडा फहराने से आस-पास के रईस और छोटे-मोटे नवाव थर्रा उठे और उन्होने आ-आकर लाखो मोहर महाराज को भेटदी। वे सब महाराज रणजीतसिह के मित्र वनगये।

हरिसिह नलवा ने रात्रि के अधकार मे किले के नीचे सुरग वनाकर उसमे बारूद बिछाकर दीवार को उडादेने का निश्चय किया। हरिसिह नलवा, सरदार अत्तरसिह, मरदार निहालसिह पिछत्तर जवानो को साथ लेकर आवश्यक औजारो और वारूद के साथ किले की ओर बढे।

किले की दीवारो पर से मशालो के प्रकाश से शत्रु ने उन्हे देखलिया। उन्होने ऊपर से गोलियाँ बरसानी आरम्भ करदी परन्तु इन वीरो के कदम न रुकसके। एक वीर गिरता था तो दूसरा उसका स्थान लेलेता था। आखिर सिक्ख जवान किले की दीवार के निकट पहुँचगए और घन, छैनी से दीवार के पत्थर निकालकर उसमे बारूद भरदी और बारूद भरकर उसमे आग लगादीगई।

यह देखकर ऊपर से शत्रु ने गर्म पिघली हुई राल बरसानी आरम्भ करदी, जिससे हरिसिह नलवा और सरदार अत्तरसिह के बदन झुलसगये।

बारूद मे आग लगनी थी कि दुर्ग की दीवार भूमि से मिलगई। दीवार के गिरते ही महाराज रणजीतसिह ने सेना को दुर्ग मे घुसने की आज्ञा दी। दुर्ग के अन्दर मारकाट मच गई। गोलेखॉ तोपची ने तोप का मुह खोल दिया। उसके सामने पठानो की सेना भुन-भुनकर ढेर होनेलगी। शत्रु के छक्के छूट गये।

मुजफ्फरखॉ ने जव देखा कि बचकर भाग निकलने की कोई सम्भावना नही रही तो उसने सफेद झडा फहराकर हथियार डालदिये। महाराज रणजीतसिह ने मुजफ्फरखॉ को क्षमाकर

दिया परन्तु वह भविष्य मे कोई गडबड न करे इसके लिये उसके पुत्र अबूबकरखाँ को उसकी जमानत मे लेकर लाहौर भेजदिया। इस प्रकार मुजफ्फरखाँ का मान-मर्दन हुआ। मुजफ्फरखाँ ने ढाई लाख मोहरे महाराज को भेट की।

महाराज रणजीतसिह को उसी समय किसी सरदार ने आकर सूचना दी कि हरिसिह नलवा इत्यादि सरदारो का कही पता नही है। यह सुनकर महाराज रणजीतसिह बहुत चिंतित हुए। उन्होने चारों ओर खोज कराई।

एक दुबला-पतला युवक दुर्ग की दीवार के पास इन वीरो की खोज कररहा था। सरदार अत्तरसिह मृत्यू को प्राप्त हो चुके थे। निहालसिह अटारीवाला बहुत बुरी तरह हताहत हुए थे और हरिसिंह नलवा का कही पता नही था। उसने बडी सावधानी से मिट्टी को खोदना आरम्भ किया। खोदते-खोदते उसे हरिसिह नलवा का बदन दिखाई दिया। उसने उसकी नासिका के पास उँगली रखकर देखा तो श्वाँस चल-रहा था। यह देखकर उसके चेहरे पर प्रसन्नता छागई।

उस युवक ने हरिसिह नलवा के बदन को धीरे से सर-काया। वह उसे एक छकडे पर डालकर लेचला। मार्ग मे उसे भागते हुए पठानो का एक दल मिला। वह भयभीत होकर वही ठिठक गया। उसने इधर-उधर से घास कूडा बटोरकर हरिसिह नलवा के ऊपर डालदिया, जिससे कोई उन्हे पहचान न सके और स्वयँ एक ओर बैठकर नमाज पढने लगा।

पठान सैनिको ने उस ओर कोई ध्यान न दिया। उन्हे

अपनी जान बचाने की पडी थी। वे सीधे लपके हुए आगे निकल गये।

पठान सैनिको के चलेजाने पर वह युवक फिर छकडे के निकट आगया और उसे घसीटता हुआ आगे वढा। घसीटते-घसीटते उसे पसीना आगया परन्तु अब वह खालसा-शिविर के निकट आचुका था। उसने अपनी गति और तीव्र करदी।

महाराज रणजीतसिह के निकट लेजाकर उसने छकडा रोक दिया और सिर से पगडी उतार दी। सिरसे पगडी उतरने पर उसकी लटे इधर-उधर को बिखरगई। महाराज रणजीत-सिह हरशरणकौर को इस रूप मे देखकर गद्गद् होगये। वह वोले, "तुम धन्य हो बहन हरशरणकौर! तुमने इस समय वह कार्य किया है जो अन्य कोई नही करसकता था। तुम जैसी देवियो पर भारत-माता को सर्वदा गर्व रहेगा।"

हरिसिह नलवा को तुरन्त वैद्य को बुलवाकर दिखाया गया। उन्हे उपचार के लिए एक प्रथक डेरे मे भेज दियागया और जब तक वह पूर्ण स्वस्थ नही होगये तब तक हरशरणकौर उनके पास से एक क्षण के लिये भी अलग न हुई। हरिसिह नलवा कुछ दिन मे स्वस्थ होगये।

महाराज रणजीतसिह ने हरिसिह नलवा को २०,००० रुपये की जागीर और दी।

मुलतान का नवाब बहुत चालबाज निकला। महाराज रणजीतहिह की फौजे जैसे ही मुलतान से वापस लौटी वैसे ही उसने फिर सिर उठाना आरम्भ कर दिया। उसने फिर बगावत आरम्भ करदी। महाराज रणजीतसिह को छ वार

अपनी सेना मुलतान भेजनी पडी और छः बार उन्होने उससे रुपया लेकर उसे मुक्त करदिया। यह महाराज रणजीतसिंह की राजनीतिक भूल थी।

३० जनवरी सन् १८१८ को सातवी बार महाराज रणजीतसिंह की सेना ने २५००० खालसा सेनिको के साथ मुलतान का घेरा डाला। २ फरवरी को खालसा वीर मुलतान पर टूटपड़े। नगर की दीवार तोपो के गोलो से बिस्मार होगई। हरिसिंह नलवा ने इतनी तीव्र गति से पठानो पर आक्रमण किया था कि पठान भाग खडे हुए। वे लोग वहाँ से भागकर किले मे जाछिपे। नगर खालसा वीरो के हाथो मे आगया। नगर पर खालसा-झडा फहराने लगा।

नगर का प्रबन्ध ठीक करके खालसा वीरो ने किले का घेरा डालदिया। किले को इस तरह घेर लिया कि उसके अन्दर जाने का कोई भी मार्ग न रहा परन्तु नवाब ने किले मे पहले से ही काफी खाने-पीने का सामान इकट्ठा करलिया था। उसके पास इतना सामान था कि वह एक वर्ष तक आराम से किले मे रहसकता था।

किले का घेरा डाले हुए तीन महीने व्यतीत होगये। बहुत से सैनिक गोलियो की वर्षा मे मारे गये। वैसाखी का दिन निकट आरहा था। गर्मी का मौसम था और सख्त गर्मी पड़रही थी। खालसा-शिविर मे हैजा फैलगया। लाहौर मे महाराज राजसिंह को इसकी सूचना मिली तो उन्हे बहुत दुःख हुआ। वह उसी समय फूलसिंह अकाली के पास गये

और उससे कहा, "फूलसिह प्यारे ! खालासा-बेडा मझधार में है। उसे इस समय तुम ही बचा सकते हो।"

वीर फूलसिह कृपाण हाथ मे लेकर गरजता हुआ बोला, "सतसिरी अकाल।"

फूलसिह अपने शहीदी दल को साथ लेकर विना मार्ग मे एक क्षण के लिए भी रुके सीधा मुलतान जापहुँचा। फूलसिह को देखते ही खालसा सेना का जोश बढगया। 'जमजमा' और 'जग बिजली' तोपे गढ के खिजरी द्वार पर लगादी गईं। उनसे किले के फाटक पर आग बरसन लगी। गोलो की मार से दरवाजे मे दराड आगई। वीर फूलसिह उसी दराड़ से होकर किले मे घुसगया। फूलसिह को किले मे घुसते देखकर सिख-सेना उसी द्वार से किले मे घुसने लगी। 'सतसिरी अकाल' के नारे से दुर्ग का वायु-मडल गु जायमान होउठा।

दुर्ग के अन्दर घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। नवाब मुजफ्फरखॉ के पास भी सेना कम नही थी। छटे हुए पठान सैनिक थे। वे भी सिक्खो से भिडगये। शवो से जमीन पट गई। हरिसिह नलवा ने प्रलय का दृश्य उपस्थित करदिया। इस युद्ध मे मुजफ्फरखॉ अपने पॉच पुत्रो सहित मृत्यु को प्राप्त हुआ। दुर्ग पर खालसा-पताका फहरा उठी।

इस युद्ध मे सात हजार बन्दूके, नौ तोपे और बहुत से अस्त्र-शस्त्र खालसा सेना के हाथ लगे।

मुलतान महाराज रणजीतसिह के हाथो मे आगया। सिख-राज्य मुलतान तक फैलगया। इस युद्ध से हरिसिह नलवा ने पठानो के दिलो पर अपनी ऐसी धाक जमाई कि

वहाॅ का बच्चा-बच्चा उनके नाम से काॅपने लगा, वहाँ की स्त्रियाॅ उससे भयभीत होउठी। यदि कोई वहाॅ भूले से भी हरिसिह नलवा का नाम उच्चारण कर देता था तो उन्हे पसीना आनेलगता था।

हरिसिह नलवा को वीरता की धाक अब पजाब, अफगानिस्तान और विलोॅचिस्तान तक छागई थी।

कश्मीर का शासन

५

खालसा शक्ति दिन दूनी और रात चौगुनी बढती जा-रही थी। हरिसिह नलवा का आतक चारो दिशाओ मे छा-गया था। अब मुसलमान नवाब हिन्दुओ पर अत्याचार करने का साहस नही करपाते थे।

७ फरवरी सन् १८१२ को महाराज रणजीतसिह की आज्ञा से खालसा-वीरो ने मिट्ठा टिवाण की दिशा मे प्रस्थान किया। हरिसिह नलवा और वीर दलसिह ने शाहपुर का घेरा डाला। खालसा वीरो की मार से भयभीत होकर वहाँ का नवाब अहमदयारखाँ दुर्ग छोडकर भाग खडा हुआ। खालसा-झडा दुर्ग पर फहरा दिया गया। किले के द्वार पर खालसा-तोपे दागकर विजय की घोषणा कीगई।

वहाँ से लौटतेहुए मार्ग मे हरिसिह नलवा ने बहावल-पुर के गिलानी और बुखारी सैयदो को बुरी तरह कुचला। उनके दिमागो की सब बू निकालदी और जब उन्होने मुँह मे घास दबाकर क्षमा माँगी तब उन्हे क्षमा किया।

इस बार महाराज रणजीतसिह ने हरिसिह नलवा की वीरता पर प्रसन्न होकर उन्हे मिट्ठा और टिवाणा का सारा क्षत्र जागीर में देदिया।

महाराज रणजीतसिंह ने मिट्ठा टिवाण की विजय के पश्चात हरिसिंह नलवा और राजा मोहकम चन्द को अटक पर आक्रमण करने के लिए भेजा। दोस्त मुहम्मदखाँ को इस आक्रमण का पहले से पता चलगया था। इसलिए वह १५००० पठानो की सेना लेकर शमसाबाद के पास आकर जमगया।

हरिसिंह नलवा के सामने ये १५००० पठान क्या महत्व रखते थे ? वह सिंह की तरह गरजता हुआ पठानो पर टूट पडा। हरिसिंह नलवा की तोपो ने आकाश को गुंजा दिया। हरिसिंह नलवा जिधर से भी निकल जाता था पठानों के शव बिछते चलेजाते थे। वह जिधर भी बढता था तूफ़ान-सा उठता चलाजाता था। इस तूफान के समक्ष पठान न ठहर सके। उन्होने मैदान छोड दिया। उनके मैदान छोड़ते ही हरिसिंह नलवा ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अटक का दुर्ग हरिसिंह नलवा के अधिकार मे आगया।

उस समय कश्मीर मे मुहम्मद जब्बारखाँ का राज्य था। जब्बारखाँ बहुत ही क्रूर शासक था। उससे कश्मीर की जनता हर समय आतंकित रहती थी। हिन्दुओ पर वह बहुत अत्याचार करता था। वह ब्राह्मणो को रस्सी मे बँधवाकर डल झील मे फिकवादेता था और स्वयँ झील के किनारे खड़ा बंसी बजाता रहता था। जिस देश मे किसी समय कश्यप ऋषि का आश्रम था और देश भर के बच्चे शिक्षा प्राप्त करते थे वहाँ की अब यह दशा थी।

कश्मीर के बीरबल पंडित अपने पुत्र के साथ कश्मीर से भागकर लाहौर पहुँचे। उन्होने नवाब मुहम्मद जब्बार के

अत्याचारो की कहानी महाराज रणजीतसिह के समक्ष सुनाई। उसे सुनकर महाराज रणजीतसिह को बहुत क्रोध आया। उन्होने अपने सेनापति हरिसिह नलवा को आज्ञा दी कि ३०,००० सेना लेकर कश्मीर पर आक्रमण करे और मुहम्मद जब्बार को उसकी निरकुशता और अत्याचारो का दण्ड दे।

हरिसिह नलवा ने राणा रणजीतसिह की आज्ञा पाते ही कश्मीर के लिए प्रस्थान किया। उन्होने फूलासिह और उनके साथियो को भी अपने साथ लिया और १ मई सन् १८१९ ई० को राजौरी जापहुँचे। वहाँ का नवाब अगरखाँ अभी युद्ध की तैयारी पूरी तरह कर भी न पाया था कि हरिसिह नलवा ने उसे घर दबाया। उसपर इतना भयकर आक्रमण किया कि उसके छक्के छूटगए। हरिसिह नलवा ने उसे बन्दी बनालिया।

राजौरी पर अधिकार करके हरिसिह नलवा ने पुछ की ओर प्रस्थान किया। पुछ का नवाब अपने किले मे जाकर छिपगया परतु वहाँ भी वह सुरक्षा प्राप्त न करसका। हरिसिह नलवा ने गढ की जडो मे बारूद भरवाकर गढ को उड़ादिया। खालसा वीर गढ मे घुसगए। 'सतसिरी अकाल' के नारो से वायु-मण्डल गूंज उठा। वहाँ के शासक जबर-दस्तखाँ ने भागने का प्रयत्न किया परन्तु हरिसिह नलवा के हाथो से छूटकर भागना सम्भव नही था। हरिसिह नलवा ने उसे भी बन्दी बनालिया।

पुछ के दुर्ग पर खालसा-झडा फहराकर हरिसिह नलवा ने सोपियाँ मैदान की ओर कूच किया। कश्मीर का नवाब

उसी स्थान पर अपनी सेना के साथ हरिसिह नलवा से मोर्चा लेने के लिए अड़ा खडा था।

तीन जौलाई को प्रात काल हरिसिह नलवा अचानक नवाब पर टूट पड़ा। भयकर युद्ध हुआ। फूलासिह अकाली ने इस युद्ध मे ऐसी मारकाट मचाई कि शत्रु का सेनापति मेहर दिल अपने साथियो सहित मारागया। उसी समय नवाब जब्बार-खाँ हरिसिह नलवा के सामने पडगया। नवाब ने हरिसिह नलवा पर आक्रमण करने के लिए तलवार उठाई। हरिसिह नलवा ने विद्युत गति से जब्बार के हाथ पर ऐसा वार किया कि तलवार के साथ उसका हाथ कटकर नीचे गिरपडा। नवाब दर्द से कराहता हुआ मैदान से भाग खडा हुआ।

हरिसिह नलवा अपनी सेना के साथ श्रीनगर की ओर बढगए। चार जौलाई को उन्होने श्रीनगर में प्रवेश किया। श्रीनगर पर खालसा-झंडा फहरादिया गया। उसके पश्चात मुजफ्फराबाद, दरबद, पखली, धूमकौड इत्यादि पर भी हरि-सिह नलवा ने अधिकार कर लिया। इन स्थानो पर विजय प्राप्त करने के लिए हरिसिह नलवा को अधिक युद्ध नही करना पडा।

कश्मीर-विजय का समाचार प्राप्त कर महाराज रणजीत-सिह को हार्दिक प्रसन्नता हुई। उन्होने हरिसिह नलवा को कश्मीर का गवर्नर नियुक्त किया। हरिसिह नलवा ने कश्मीर का इतना अच्छा प्रबन्ध किया कि वहाँ की जनता को बहुत शाति प्राप्त हुई। उन्होने हिन्दू मुसलमानो के तो क्या शिया और सुन्नियो के भी आपसी झगडे समाप्त करदिए। हिन्दू और मुसलमान प्रेम-पूर्वक शाति के साथ रहने लगे।

महाराज रणजीतसिह ने हरिसिह नलवा को कश्मीर मे अपने नाम का सिक्का चलाने की आज्ञा दी। वहाँ हरिसिह नलवा के नाम का सिक्का चलाया गया।

हरिसिह नलवा ने कश्मीर के व्यापार की उन्नति मे योग दिया। वहाँ के व्यापारियो को पश्मीने का माल दिसावर भजने की सुविधा प्रदान की। इससे कश्मीर की आर्थिक दशा मे सुधार हुआ।

वहाँ की जनता हरिसिह नलवा को इतना प्रेम करने लगी थी कि जब ६ नवम्बर सन् १८२१ मे हरिसिंह नलवा ने काश्मीर छोडा तो वहाँ की जनता की आँखो मे आँसू आगए। हरिसिह की न्यायप्रियता से वहाँ की जनता बहुत प्रभावित हुई थी।

वहाँ के प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने आपकी विदायगी के समय आपको बेशकीमती वस्तुएँ भेट स्वरूप प्रदान की। हरिसिंह नलवा ने लाहौर पहुँचकर वे सब भेट महाराज रणजीतसिह के चरणो मे रखदी।

महाराज रणजीतसिह ने हरिसिह नलवा की स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर वे सब चीजे उन्ही को देदी।

विजय के पथ पर

६

कश्मीर से लौटकर हरिसिह नलवा ने मुघेर की ओर बढते हुए मार्ग मे माँगली के जदूनो को धर दबाया। उसने आनन-फानन मे इस पर्वतीय प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। जदून पठान भय से काँप उठे और उन्होने घुटने टेक दिए।

वहाँ से आगे बढकर हरिसिह नलवा खुशाब के रेतीले प्रदेश की ओर बढे, जहाँ स्वयँ महाराज रणजीतसिह उनकी प्रतीक्षा मे थे। अहमदखाँ २५००० सैनिको को साथ लेकर खालसा-सेना से लोहा लेने के लिए मैदान मे डटाहुआ था। हरिसिह नलवा अपने वीर सरदारो के साथ उनपर टूटपड़े। तीन दिन तक घमासान युद्ध होता रहा। वहाँ मुसलमानो के सात दुर्ग थे। उन सभी पर हरिसिह नलवा ने खालसा-झंडा फहरा दिया। इन सातो दुर्गो को जीतकर चौथे दिन हरिसिह नलवा मुघेर पहुँचे।

खालसा-तोपो ने मुघेर के किले को घेर लिया और तोपो से दुर्ग पर भयकर गोलाबारी की। दुर्ग को खडहर बनादियागया और शत्रु पर इतनी तीव्र गति से आक्रमण किया कि वे भतभीत होउठे। अन्त मे उन्हे हथियार डालदेने पड़े और २० दिसम्बर सन् १८२१ को हरिसिह नलवा ने दुर्ग पर अपना झडा फहरा दिया।

पठानो की शक्ति तितर-बितर होगई। अब वे इधर-उधर झुड बनाकर घूमनेलगे और अवसर देखकर सिखो पर छापे मारने लगे। हरिसिह नलवा २७ फरवरी सन् १८२२ को सराय सहेल के मैदान मे पहूँचे। वहाँ हाशमखाँ कराल उनसे लोहा लेने को तय्यार खडा था। हरिसिह नलवा ने उस पर इतनी तीव्र गति से आक्रमण किया कि उसके छक्के छूट गए और उसने हथियार डाल दिये।

हरिसिह नलवा ने हाशमखाँ को क्षमा करके उसका सारा प्रदेश सिख-राज्य में मिलालिया।

इसके पश्चात् हरिसिह नलवा नौशहरा की ओर बढे। नौशहरा के नवाब ने २५,००० सैनिको को लेकर हरिसिह नलवा का सामना किया परन्तु विजय हरिसिह नलवा की ही हुई। १४ मार्च सन् १८२३ ई० को हरिसिह नलवा ने मुहम्मद अजमखाँ को परास्त करदिया। अफगान-सेना के पाँव उखड गए। हरिसिह नलवा की इन विजयो ने सीमा-प्रदेशो मे सिक्खों की धाक जमादी।

अब पंजाब और सीमा-प्रदेशो मे हरिसिह नलवा का सामना करने का किसी मे साहस नही रहा। उनके नाम से शत्रु थर्राते थे। एक दिन की घटना है कि मिचनी से कुछ दूरी एक हिन्दू युवक अपनी पत्नी को पालकी मे लेजारहा था। उसकी पत्नी की पालकी को उठाकर लेजाने वाले पठान थे। मार्ग मे उसकी पत्नी को प्यास लगी। युवक ने उनमे से एक पठान को पानी लाकर देने के लिए कहा।

पठान ने पानी देते समय उस युवक की पत्नी को देखा तो वह उसके रूप पर मोहित होउठा ।

सध्या-समय होगया था । पठान पालकी को एक गाँव के निकट रखकर गाँव मे हुक्का-पानी पीने चलेगए । उस गाँव का सरदार भी एक पठान था । पालकी को लेजानेवाले पठानो ने उस सरदार के समक्ष युवक की पत्नी के रूप की चर्चा की तो उसने सोचा कि क्यो न वह बलपूर्वक उस युवती पर अपना अधिकार जमाले । वह उन पठानो के साथ पालकी के निकट आया और युवक पर अचानक आक्रमण करके उसे मारडाला । युवक को मारकर वह युवती को बलपूर्वक उठाकर लेगया ।

पालकी से कुछ दूर पीछे युवक का पिता आरहा था । उसने अपने पुत्र का शव और खाली पालकी देखी तो वह भयभीत होउठा । वह रोता-पीटता वहाँ से उलटे पैरो भागलिया । मार्ग मे हरिसिह नलवा की छावनी पडी थी । एक सैनिक की उसपर दृष्टि पडी तो वह उसे हरिसिह नलवा के पास लेगया ।

हरिसिह नलवा ने वृद्ध की करुण-कथा सुनी तो उनके तन-बदन मे आग लगगई । उनके पास केवल सौ सैनिक थे । वह रात्रि के अधकार में अपने सौ सैनिको को साथ लेकर मिचनी के सरदार पर टूट पड़े । सरदार उस समय शराब के नशे मे सराबोर था । खालसा वीरो ने गाँव मे तबाही मचादी । सरदार के महल में खून की नदी वहादी और जो भी

सामने पडा उसे टुकडे-टुकडे करदिया। हरिसिह नलवा ने नवाब को कुत्ते की तरह घसीटकर बीच चौक मे लापटका और दूसरे दिन उसे तोप के मुँह पर रखकर सारे गाँव के सामने उडवा दिया। हरिसिह नलवा ने घोपणा की, "भविष्य मे किसी ने यदि किसी बहू-बेटी के साथ ऐसा व्यवहार किया तो उसे इतनी ही सख्त सजा दीजाएगी।"

युवती को युवक के पिता के हवाले कर दिया गया। इस घटना का पूरे इलाके पर इतना प्रभाव पडा कि लोग स्त्रियो की ओर नजर डालतेहुए भी काँपने लगे।

हरिसिह नलवा आगे बढते हुए पेशावर तक पहुँचगए। हरिसिह नलवा का नाम सुनकर पठान काँप उठते थे, उनके रोगटे खडे होजाते थे और वे मैदान छोडकर भागते ही बनता था। उन्हे लगता था कि जैसे उनका काल उसके सामने खडा हुआ था।

पेशावर से आगे बढकर अफगानिस्तान की सीमा पर हरिसिह नलवा ने जमरोद नामक दुर्ग का निर्माण कराया। यह दुर्ग इसलिए बनवाया गया था कि जिससे शत्रु उधर के प्रदेश पर आक्रमण न करसके और उन्हे जमरोद पर ही रोकाजासके।

२८ अप्रेल सन् १८३७ को पठानो ने सिक्खो की बढती हुई शक्ति को रोकने के लिए जमरोद का घेरा डाला। उन दिनो लाहौर मे महाराज रणजीतसिंह के पुत्र की शादी का प्रबन्ध होरहा था। इसलिए सेना लाहौर मे हो थो और हरिसिह
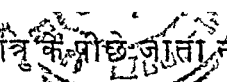
नलवा बीमारी की दशा मे पेशावर मे थे । जमरोद के किले का सरक्षण-भार सरदार महासिह पर था । उनके पास केवल पाँचसौ जवान थे । बहन हरशरणकौर भी जमरोद मे थी ।

इस गम्भीर स्थिति को देखकर बहन हरशरणकौर बोली "महासिह ! तुम चिन्ता न करो । मैं अभी पेशावर जाती हूँ और यदि सकुशल पहुँचगई तो अपने साथ तोपो को लाने का प्रबन्ध करूँगी ।"

हरशरणकौर बहुत होशियारी से गढ की दीवार से नीचे उतरी और पठानो की दृष्टि से बचकर उनके घेरे से बाहर निकलगई। वहाँ से वह पेशावर पहूँची । हरशरणकौर से जमरोद के किले का समाचार प्राप्त कर हरसिह नलवा ने तुरन्त जमरोद की ओर कूच किया । यह उनकी वह दशा थी जब वैद्य और हकीमो ने उन्हे हिलने-जुलने तक के लिए मना किया हुआ था । परन्तु शत्रु के आक्रमण की बात सुन कर वह शेर बैठा कैसे रहसकता था ?

हरिसिह नलवा के पास भी अधिक सैना नही थी क्योकि सैना लाहौर जाचुकी थी। फिर भी जो जवान उनके पास थे उन्ही को लेकर उन्होने पठानो पर आक्रमण किया। उधर से महासिह के पाँच सौ जवान और इधर से हरिसिह नलवा के वीर, पठान चक्की के दो पाटो के बीच मे पिसकर रहगए । पठान-सेना का भयकर विनाश हुआ । उनके पैर उखड़गए और जमरोद का घेरा टूटगया ।

सरदार निधानसिह ने शत्रु का पीछा किया । हरिसिह नलवा रोगग्रस्त थे फिर भी सरदार निधानसिह को वह अकेला

शत्रु के पीछे जाता न देख सके। उन्होने अपने जवानो को सरदार निधानसिंह के साथ आगे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं अपना घोडा भी उधर छोड दिया। कुछ दूर आगे बढकर सिक्खो की पठान शम्सखॉ से मुठ-भेड हुई। हरिसिह नलवा ने इधर घाटी मे प्रवेश किया और उधर पठानो ने गोलियो की बौछार की। इस बौछार मे एक गोली हरिसिह नलवा की छाती मे आकर लगी।

गोली खाकर हरिसिह नलवा घोडे से गिरे नही। उन्होने हाथ से घाव को दबा लिया और अपने आपको सँभालकर घोडे को पीछे की दिशा मे मोड़ कर एड लगाई। घोड़ा उसी दशा मे उन्हे जमरोद लेगया। हरिसिह नलवा का घोडे की पीठ पर ही देहावसान होगया। जमरोद मे घोडे की पीठ से वीर हरिसिह नलवा का शव उतारा तो सब दर्शको के नेत्रो से अश्रुओ की झड़ी लगगई।

३० अप्रेल सन् १८३७ को रात्रि के अंधकार में हरिसिह नलवा के शव का दाह-सस्कार हुआ। यह समाचार महाराज रणजीतसिह के पास पहुँचाया गया। इसे सुनकर महाराज की आँखो मे आँसू आगए। उनकी जबान से निकला, "भारत-माता का सच्चा सपूत खोगया। मेरा आज दाहिना हाथ टूट गया।"

इससे रणजीतसिह को इतना क्रोध आया कि उन्होने तुरन्त अपनी पूरी सेना के साथ जमरोद के लिए कूच किया। वहाँ जाकर आपने हरिसिह नलवा की समाधि बनवाई और उसपर अश्रु बरसाते हुए पुष्प-माला चढाई।

हरिसिह नलवा भारत के उन वीरो मे से थे जिन्होने युद्ध को आजीवन खेल समझा और जिस युद्ध मे भी गए सर्वदा विजय प्राप्त की । विजय उनके हाथो मे कठपुतली की तरह नाचती थी । उन्होने अपने जीवन मे कभी पराजय का मुँह नही देखा और हारकर कभो किसी से सधि नही की । सिख राज्य को इतना व्यापक रूप देनेवाले हरिसिह नलवा ही थे । इसीलिए महाराज रणजीतसिंह उन्हे अपना दाहिना हाथ कहते थे ।

एक महान वीर

७

हरिसिह नलवा भारत के उन महान् वीरो मे से एक थे जिनपर भारत-माता को गर्व है। आपने महारणा प्रताप्-सिह और शिवाजी के समान भारतीय सकृति की रक्षा की और मुगल शासन की अव्यवस्था के कारण देश मे फैले आतक को दूर किया।

हरिसिह नलवा असहायो के सहायक थे। उनके कश्मीर के शासन की मुसलमानो ने भी मुक्त कठ से सराहना की है। उनके शासन-काल मे कश्मीर ने शाति की श्वॉस ली थी और उन्हे मुहम्मद जब्बार के जुल्म से सुरक्षा मिली थी।

हरिसिह नलवा ने मुगल-शासन के अव्यवास्था काल मे भारत की पश्चिमी सीमा की सुरक्षा की और भारत को पठानो के आक्रमण से मुक्त रखा। उस समय यदि अफगा-निस्तान की ओर से कोई आक्रमण होता तो मुगल शासको म उसे रोकने की शक्ति नही थी। वे लोग बढकर दिल्ली तक सरलतापूर्वक आजाते और देश का भयकर विध्वस होता यदि हरिसिह नलवा ने पजाब में अपनी शक्ति की दीवार न खडी करदी होती। उस दीवार ने इस अव्यनस्था-काल मे भारतीय जनता की रक्षा की।

हरिसिह नलवा की शक्ति ने बिलोचिस्तान और अफगानिस्तान तक भारतीय वीरता का यश फैला दिया। अफगानिस्तान का बच्चा हरिसिह नलवा के नाम से थर्राता था। वहाँ के सरदार भारत की ओर कुदृष्टि से देखने का साहस नही कर सकते थे।

हरिसिह नलवा केवल पजाब का शेर नही था वह भारत का शेर था। उसने भारत माता के यश और गौरव को चार चाद लगाये और भारतीयता को सुरक्षा प्रदान की।

हरिसिह नलवा भारतीय इतिहास के उन गौरव-प्राप्त रत्नो मे से है जिसका नाम इतिहास मे स्वर्णाक्षिरो से लिखा हुआ है। उनके गौरव की कहानियाँ भारत के बच्चो मे वीरता की भावना भरती है और उन्हे वीर बनने की प्रेरणा देती है।

आज, जब कि हम देख रहे है कि भारत की उत्तर, पश्चिम और पूर्व की सीमाओ पर आशाति बनी हुई हो तो हमे ऐसे ही देश-प्रेम के मतवाले वीरो की आवश्यकता है जो भारत-भूमि की ओर कुदृष्टि से देखने वालो के दिल दहला सके और उन्हे अपने पराक्रमपूर्ण शौर्य से दिखादे कि यदि उन्होने भारत की ओर बढने का साहस किया तो उन्हे पर्वतो से टकराना होगा।

हरिसिह नलवा हमारे देशवासियो के समक्ष वीरता और साहस के प्रतीक है। उनके लिए भारत-वासियो मे सर्वदा आदर की भावना बनी रहेगी।

हरिसिंह नलवा ने भारतीय जनता मे अपने सम्मान और सुरक्षा की भावना को भारा था। आज भी उनका जीवन-चरित्र हमारे देशवासियो मे उसी भावना का प्रसार करता है।

हरिसिंह नलवा भारत का वह सिंह था जिसके समक्ष शत्रु ने कभी ठहरने का साहस नही किया।